अन्तर्ज्वाला

—चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

अन्तर्ज्वाला

लेखक—
स्वातन्त्र्य-वीर श्री सावरकर जी
श्री पं० चन्द्रगुप्त जी वेदालङ्कार
स्व० देशभक्त लाला हरदयाल जी

राजपाल एण्ड सन्ज़
संचालक-सरस्वती आश्रम
अनारकली — लाहौर

'अन्तर्ज्वाला' प्रकाशित कर दी है—इस आशा से कि इस
ज्वाला का प्रकाश पथ-प्रदर्शक का काम दे ! इसके
आलोकमें हम अपनी वास्तविक स्थिति समझें
तथा केवल उसी मार्ग को अपनायें
जो हमारे राष्ट्र की सत्ता और
मर्यादा को कायम रखते
हुए, हमें अपने ध्येय
तक पहुँचाने में
पूर्ण सहा-
यक हो !

इस 'ज्वाला' का प्रकाश घर-घर पहुँचना चाहिए ! इस
'ज्वाला' की चिन्गारियाँ हिन्दू-हृदयों में राष्ट्र-भावना
और जातीय-प्रेम के ऐसे शोले भड़का दें कि
राष्ट्र का बच्चा-बच्चा मूर्तिमान् ज्वाला
बन जाए और स्वतन्त्रता के
धधकते महान् यज्ञ में
आहुति बनने को
तत्पर रहे !!

[मूल्य दो रुपया

विषय सूची
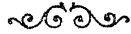
पृष्ठ-संख्या

१. अखण्ड भारत—श्री चन्द्रगुप्त जी वेदालङ्कार १
२. स्वराज्य की सीधी राह—श्री सावरकर ३३
३. अन्तर्ज्वाला—श्री चन्द्रगुप्त जी वेदालङ्कार ४७
४. हिन्दी ही क्यों ?— ,, ,, ७०
५. चेतावनी— ,, ,, १०३
६. हिन्दुओं का राजनैतिक आदर्श—श्री सावरकर ११६
७. खरी-खरी बातें—स्व० लाला हरदयाल जी १३२
८. मेरी पुकार—स्व० लाला हरदयाल जी १३६

प्रकाशकीय

मैं श्री पं० चन्द्रगुप्त जी वेदालङ्कार का हृदय से आभारी हूँ जिनके सहयोग के बिना सम्भवतः 'अन्तर्ज्वाला' का प्रादुर्भाव इतने उज्ज्वल रूप में न हो पाता। मान्य पण्डित जी के हृदय में देशभक्ति, राष्ट्र प्रेम और जातीय हित की भावनाएँ पूर्णतया घर कर चुकी हैं। आपने अपना सर्वस्व देशहित अर्पण कर रखा है। आप अपने अभी-छोटे से-ही राजनीतिक जीवन में कई बार हिन्दुत्व-हित जेल-यात्रा कर चुके हैं। इस 'अन्तर्ज्वाला' का भी सारा श्रेय वस्तुतः आप ही को है।

स्वातन्त्र्य-वीर श्री सावरकर जी, प्रधान, अखिल भारतीय हिन्दू महासभा एवं देशभक्त स्वर्गीय लाला हरदयाल जी के विषय में विशेष कुछ कह कर, मैं उनके चतुर्मुखी व्यक्तित्व को परिमित नहीं करना चाहता, अतः उनके प्रति केवल अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हुआ वक्तव्य समाप्त करता हूँ।

—विश्वनाथ एम॰ ए॰

अखण्ड भारत

बन्धुओ ! आज जिस परिस्थिति में हम लोग यहां अपनी राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने के लिये इकट्ठे हुए हैं, वह संसार के इतिहास में एक अनोखी घटना है। हमारे राष्ट्र की सीमाओं से कुछ ही दूरी पर संसार की महाशक्तियोंमें पारस्परिक साम्राज्य-लिप्सा के लिये जो घमासान लड़ाई हो रही है, उससे विश्वव्यापी परिणाम निकलने वाले हैं। प्रजातन्त्रीय विचारों का प्रसार होने से युद्ध भी आज प्रजातन्त्रीय हो गये हैं। इस महायुद्ध का चाहे कोई भी परिणाम हो, परन्तु एक बात निश्चित है और वह यह कि भारत उस परिणाम से अछूता नहीं रह सकता। योरुप की ये शक्तियां जो अपने को देवदूत बता कर काली जातियों पर शासन

करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझती हैं, वे ही आज अपने द्वारा आविष्कृत विज्ञान के उच्चतम यंत्रों से यादवकुल की न्याई नष्ट हो रही हैं। आँखों की एक झपक में ही बड़े-बड़े साम्राज्य ताशों से बने घरों की तरह छिन्न-भिन्न हो रहे हैं। सभ्यता के उच्चतम केन्द्र राख के ढेरों में परिणत हो चुके हैं। कला के सुंदर नमूने आकाश से बरसती आग में धांय धांय करके जल रहे हैं। पश्चिम का सुसंस्कृत मनुष्य आज इतना 'बर्बर' होगया है कि बच्चे बूढ़े और बीमार भी उसके निशाने से नहीं बच सकते। विश्व को सभ्यता का पाठ सिखाने वाले आज आस्मानी मौत से बचने के लिये धरती माता में गुफायें बनाकर जिस किसी प्रकार अपने प्राणों की रक्षा कर रहे हैं। एक ओर जहां रणचण्डी का यह भीषणनृत्य हो रहा है, दूसरी ओर अपने ही देश में गृहयुद्ध की लपटें हमें भयभीत बना रही हैं। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति से अनुचित लाभ उठा कर पाकिस्तानियों के झुण्ड के झुण्ड आज देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक जोशीली वक्तृताओं द्वारा सरकार और हिंदुओं को धमकाते हुए कह रहे हैं—हमारी शर्तें मान लो वर्ना पछताना पड़ेगा। मद्रास में हुए मुसलिम लीग के अधिवेशन में अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए मि० जिन्ना ने कहा है—"हम जानना चाहते हैं कि हमें पाकिस्तान ब्रिटिश सरकार देगी अथवा किसी दूसरी शक्ति की सहायता से लेना पड़ेगा ?" नवाबज़ादा लियाकतअलीखां ने बम्बई में भाषण देते हुए कहा है—"यदि पाकिस्तान न दिया गया तो हिन्दुस्तान के लोगों को हिन्दुस्तान के मुसलमानों से दो प्रकार का भय सदा बना रहेगा। आन्तरिक अशान्ति और सीमावर्ती मुसलिम राज्यों के मेल से 'पान इस्लामिज्म' की स्थापना। अभी इलाहाबाद में जिन्ना साहब ने अपने अनुयायिओं से कहा है—

हमारा उद्देश्य है पाकिस्तान, केवल पाकिस्तान । अब यह नहीं रह गया कि वे हमें पाकिस्तान देंगे, वरन् अब तो स्थिति यह है कि हम लेंगे।' यह है वह स्थिति जिसमें हिन्दुओं को अपने जीवन और उससे भी अधिक मूल्यवान् राष्ट्र की रक्षा करनी है। इस जीवन-संघर्ष में विजयी होने के लिये हिन्दुओं को महान् त्याग करना पड़ेगा, उससे कहीं अधिक, जितना आज रूसी और चीनी कर रहे हैं।

पाकिस्तानी वक्ता और अंग्रेज राजनीतिज्ञ कह रहे हैं कि हिन्दुस्थान न कभी एक देश रहा है और न रह ही सकता है। हिन्दू इस देश के मूल निवासी नहीं हैं। भेद केवल इतना ही है कि ये यहां हम से कुछ समय पहले चले आए और हम थोड़ा समय बाद पहुँचे। हम से कहा जा रहा है कि अंग्रेज के आने से पूर्व भारत अनेक टुकड़ों में बँटा हुआ था। यहां एक जाति दूसरी जाति से और एक धर्मावलम्बी दूसरे धर्म वालोंसे लड़ते थे। ऐसी अराजकता के समय अंग्रेज आये और उन्होंने अपनी सेना, भाषा और कानून द्वारा इस देश में एकता स्थापित की। यदि आज अंगरेज़ अपनी सेना हटा लें तो १८वीं सदी की भयंकर अराजकता फिर से दृष्टिगोचर होगी। भारत की वर्तमान एकता का मूलकारण अंगरेजी शासन है और यही भारत को ब्रिटेन की श्रेष्ठतम देन है। हमारे बच्चों को पढ़ाया जा रहा है कि भारत कोई एक देश नहीं है, यह नाना देशों का समुच्चय है। (India is not a country but it is a Continent in itself) यही बात दूसरे शब्दों में सर क्रिप्स द्वारा लाई गई ब्रिटिश योजना में दोहराई गई है। ब्रिटिश राजनीतिज्ञ कहते हैं कि भारत में कोई एक भाषा, एक धर्म, एक लिपि, एक पहरावा और एक खानपान न होकर सब

बात में विविधता ही विविधता है । केवल सामाजिक और आर्थिक भिन्नतायें ही यहां नहीं हैं, प्राकृतिक दृष्टि से भी भारत में अत्यन्त विषमतायें ही दिखाई देती हैं । एक ओर चिरापून्जी में संसार में सबसे अधिक वर्षा होती है और दूसरी ओर राजस्थान बूंद-बूंद को तरसता है। एक ओर संसार का उच्चतम पर्वत हिमालय वर्ष भर बर्फ से ढका रहता है और दूसरी ओर पंजाब और सिंध की भूमि गर्मियों में आग की न्याईं तपती है । ऐसे भूखण्ड को एक देश कैसे कहा जा सकता है? परन्तु यदि एकता की यही कसौटी है तो मैं पूछता हूँ कि ब्रिटिश और जर्मन एक जैसा पहरावा पहनते हैं, एक सा खाना खाते हैं, एक सा धर्म मानते हैं, एक सी ही लिपि बरतते हैं, फिर वे दोनों आज एक दूसरे के रक्त के प्यासे क्यों बने हुए हैं? यही बात जापानियों और चीनियों के विषय में कही जा सकती है । दोनों का धर्म एक, संस्कृति एक, नस्ल एक, लिपि और भाषा भी लगभग एक सी ही है, फिर वे एक दूसरे की गर्दनें क्यों काट रहे हैं ? पता चला कि 'एकता' धर्म, भाषा, पहरावे आदि में न रह कर किसी अन्य वस्तु के आधार से रहती है । ये तत्व भी एकता के नियामक हैं, परन्तु इनके भिन्न होने पर भी एकता स्थापित हो सकती है । मैं मानता हूँ कि भारत में बहुत सी भाषाएं हैं, धर्म भी अनेक हैं, पहरावा भी भिन्न है, खान-पान में भी विषमता है, तो क्या यह विषमता भारत में ही है, अन्य किसी देश में नहीं है ? आप को ज्ञात होना चाहिये कि भारत इतना बड़ा देश है कि इसमें रूस को छोड़ कर सारा योरुप समा सकता है । इस विचार से सोचिये कि सारे योरप में कितने धर्म कितनी भाषायें और कितनी भिन्नतायें हैं? समस्त संसार में २००० बोलियां बोली जाती हैं ।

इनमें से ६०० केवल योरुप में ही प्रचलित हैं। जब वहां स्विटज़रलैंड और बेल्जियम जैसे छोटे-छोटे देशों में अनेक भाषाओं के रहते भी एकता रह सकती है तो क्या भारत एक देश नहीं हो सकता ? इस दृष्टि से इंगलैंड भी एक देश कहां है ? अंग्रेज़ों के देश का नाम इंगलैंड न होकर 'ग्रेट ब्रिटेन' अथवा 'युनाइटिड किंग्डम' है । इंगलैंड तो उसका एक नाम मात्र है Great Britain और United Kingdom ये नाम ही इस बात के सूचक हैं कि यह मूलतः एक देश न था, किन्तु इंगलैंड, वेल्स, स्काटलैंड और अलस्टर को मिला कर एक 'संयुक्त देश' बनाया गया है। अंग्रेज़ों का झण्डा 'यूनियन जैक' कहाता है। वह भी सेन्ट जार्ज, सेन्ट एण्ड्रयू और सेन्ट पैट्रिक के क्रासों का मिश्रण मात्र है। यही दशा संयुक्त राष्ट्र अमेरिका (United States of America) की है। वह भी मूलतः एक देश न हो कर ४८ राज्यों का संघ (Federation) है इसके झण्डे पर ४८ राज्यों की स्मृति में ४८ नक्षत्र बने हुए हैं। अमेरिका में नस्ल, भाषा, संस्कृति और धर्म की भिन्नता भारत से भी अधिक है। यह भिन्नता इस सीमा तक पहुंच चुकी है कि न्यूयार्क का मेयर बनने के लिये ५-६ भाषाओं को जानना आवश्यक है, अन्यथा अंग्रेज़ी, फ्रैंच, डच, जर्मन इटालियन आदि विविध जातियां बसी होने से उस का कार्य चलाना कठिन हो जाये। दक्षिण अफ्रीका में विविध जातियां रहती हैं। १९०६ में उन्हें मिलाकर 'Union of South Africa' कायम किया गया। कैनेडा में दो भिन्न जातियों को मिला कर एक देश बनाया गया। रूस में विविध जातियां, नस्लें, भाषायें और धर्म हैं। वहां भी आज U. S. S. R. की स्थापना हो गई है। पैलस्टाईन के यहूदियों और अरबों

में दिन-रात का सा विरोध होते हुए भी वह एक देश माना जाता है। फिर भारत को एक देश कहने से कौन रोक सकता है? यदि अंगरेज़ राजनीतिज्ञों के कथनानुसार भारत सचमुच ही एक देश नहीं है, तो क्या, 'United Kingdom' की तरह 'United India' पैदा नहीं किया जा सकता? हम तो Union की बात करते हैं, परन्तु आज तो Confederation बन रहे हैं। जून १६४० में फ्रांस के पतन के समय ब्रिटिश सरकार ने फ्रांस और इंगलैंड के लिये Common Citizenship के आधार पर दोनों देशों के Confederation का प्रस्ताव किया था। जब दो देशों की एकता को बीच में बहने वाला समुद्र नहीं रोक सका, फिर हमारी एकता को कौन रोक सकता है? हमारा तो देश ही एक है।

कहा जायगा कि अमेरिका ब्रिटेन आदि में तो एकता के विधायक अनेक तत्व विद्यमान हैं, परन्तु भारत में ऐसे तत्व कह हैं? मेरा उत्तर स्पष्ट है। जिसे आप भिन्नता बोलते हैं, वह हमारी एकता की द्योतक है। जो बात हमें जर्मनी, ब्रिटेन, चीन, जापान और संसार के समस्त देशों से पृथक् करती है वही हमारी एकता की नियामक है। आप भारत के किसी प्रांत में जाइये प्रत्येक हिन्दु लड़की बचपन से ही गीता के प्रति आदर बुद्धि रखती है। राम को चाहे कोई ईश्वर माने अथवा अवतार, किन्तु आर्य जाति के श्रेष्ठतम राजा होने से उनकी पूजा सर्वत्र ही होती है। हनुमान और भीमसेन हमारे लिये शक्ति के अक्षय स्रोत हैं। सावित्री और दमयन्ती पतिव्रत धर्म की अनश्वर प्रति-मायें हैं। रामायण और महाभारत सदा नवीन श्रुति-मधुर अमर काव्य हैं। हमारा इतिहास और संस्कृति, राजा और राज्य संस्कार

और प्रथायें, कला और आकृतियां, यहां तक कि शत्रु और मित्र भी एक हैं। कालिदास का नाम आते ही हम कह उठते हैं 'वह हमारा है, और फ़िरदौसी का नाम आने पर विदेशी की भावना जागृत हो जाती है। दिवाली की उस एक रात की कल्पना कीजिये जब कि भाषा, धर्म, वेष, खान-पान की विविधता के रहते हुए भी जहां-कहीं भी कोई हिन्दू रहता है वह अपने घर में दिया जला कर बच्चों के मुँह में और नहीं तो एक बतासा देकर ही मुँह मीठा करता है। उस दिन एकमात्र स्वतन्त्र हिन्दू राजा नैपाल के महाराजा से लेकर जंगल में रहने वाला गोंड तक अपनी झोंपड़ी में दिया जलाकर अपलक नेत्रों से भगवती लक्ष्मी के आगमन की प्रतीक्षा करता है। क्या उस दिन हिमाचल से सिन्धु पर्य्यन्त सारा देश जगमगाती दीपावली की अटूट शृङ्खला के कारण एक सूत्र में बंधा दिखाई नहीं देता? इसी प्रकार विजयदशमी के दिन शक्ति-पूजा करते हुए, वसन्तोत्सव पर प्रकृति की तरह शृङ्गार करते हुए तथा होलिकोत्सव पर रंगीली पिचकारियों से निकलती धाराओं के साथ ऊंच-नीच का भेद भुला कर छोटे-बड़े सब एक-साथ गले मिलते हुए क्या भारत की एकता का गुणानुवाद नहीं करते? क्या एकता का ऐसा सुन्दर दृश्य कहीं अन्यत्र देखने को मिल सकता है?

स्वयं विधाता ने भारत को एक स्वतः पृथक् राष्ट्र के रूप में बनाया है। संसार का अन्य कोई राष्ट्र दूसरों से पृथक्, एकता में इस प्रकार नहीं बांधा गया जिस प्रकार एक ओर हिमाचल और तीन ओर समुद्र द्वारा भारत को एकता में बांधा गया है। इसे समझने के लिये भारत के मानचित्र को देखिये। हिमालय पर 'हरिद्वार' और दक्षिण समुद्र पर 'कन्या कुमारी' के नाम दिखाई देंगे। क्या

आपने कभी सोचा कि ये नाम किस का संकेत करते हैं ? हमारे साहित्य में 'शिव-पार्वती' का कथानक है। पार्वती का निश्चय था "कोटि जनम ते रगर हमारी। वरहुं शम्भु, न तु रहहुं कुमारी।". पार्वती ने शिव से ही विवाह करने का सङ्कल्प कर कठोर तप किया। हिमालय पर शिव समाधिस्थ थे और नीचे पार्वती ध्यान-मग्ना थीं। यही दृश्य हिन्दुस्थान के मानचित्र में आज भी देखा जा सकता है। हरिद्वार में शिव जी विराजमान हैं और कन्याकुमारी में पार्वती संगमरमर की प्रतिमा के रूप में खड़ी हुई आज भी हाथ जोड़ कर तपस्या कर रही हैं। पार्वती और शिव का परिणय हो जाने पर, भारत के सीमावर्ती पर्वत हिमालय की सबसे ऊँची चोटी का नाम शिव-पर्वती—दोनों के नाम पर 'गौरीशङ्कर' रखा गया, क्योंकि इस (हिमालय) के एक आश्रम में यौवनोन्मेष के समय आभूषणों के स्थान पर वल्कल पहन कर पर्वत कुमारी ने अखण्ड तप द्वारा शिव को प्राप्त किया था। जिन लोगों ने आज से सहस्त्रों वर्ष पूर्व भारत के सीमावर्ती नगरों का नाम शिव-पार्वती के कथा-नक पर रक्खा था क्या उनके सामने भारतीय एकता का विचार विद्यमान न था ? कभी ब्रह्म मुहूर्त्त में उठिये और किसी सनातनी हिन्दू को स्नान करते देखिये। वह अपने शरीर पर पानी डालता जायेगा और साथ में "गंगे च यमुने चैव सरस्वती गोदावरी। नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु—" इस श्लोक को भी जपता रहेगा। आप सोचेंगे कि यह कैसा व्यक्ति है जो इस ब्रह्म मुहूर्त्त में ईश्वर का नाम स्मरण न कर नदियों के नाम रट रहा है ? क्या वह भूगोल याद कर रहा है ? नहीं, हमारे पूर्वजों ने दिन के आरम्भ से ही हम में राष्ट्रीय भाव भरने के लिये परिपाटी बनाई थी कि वह शरीर-शुद्धि के साथ-साथ इस श्लोक

का पाठ करे। हिन्दू स्नान करते हुए श्लोक बोलता है और मन ही मन कहता है 'यह दीनानगर के कुएं का. जल नहीं है इस जल में गङ्गा, यमुना और सरस्वती (पूर्वीय भारत की नदियां) गोदावरी (पश्चिमी भारत की नदी) नर्मदा (मध्यभारत की नदी) सिन्धु (पश्चिमोत्तर भारत की नदी) और कावेरी (दक्षिण भारत की नदी) सातों नदियां सम्मिलित हैं। मैं इस पानी से नहीं, राष्ट्ररूपी जल से स्नान करता हूं। मेरा देश यही गांव नहीं है, वह गङ्गा से गोदावरी तक और सिन्धु से कावेरी पर्यन्त विस्तृत है। उसी का मैं एक अङ्ग हूँ। यही क्या, आप एक हिन्दू तीर्थयात्री को लीजिये। वह गङ्गोत्तरी से यात्रा आरम्भ करता है और रामेश्वरम् पर समाप्त करता है। रामेश्वरम् की मूर्त्ति पर हरिद्वार, प्रयाग, काशी कहीं का भी जल न चढ़ा कर गङ्गोत्तरी का जल ही चढ़ाया जाता है। जिस व्यक्ति ने इस मर्यादा को स्थापित किया था क्या उसके सम्मुख गङ्गोत्तरी से रामेश्वरम् पर्यन्त समस्त भारत की एकता का विचार विद्यमान न था? हमारे पूर्वजों ने तीर्थों की व्यवस्था भी इस प्रकार की है कि चाहे कोई शिव का भक्त हो अथवा विष्णु का, शक्ति का पुजारी हो अथवा शंकर का—सब के पवित्र स्थान भारत-भर में व्याप्त हैं। बारह ज्योतिर्लिङ्गों[1] को लीजिये। सौराष्ट्र में सोमनाथ, श्रीशैल में मल्लिका-

---

1. सौराष्ट्रे सोमनाथंच श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्-
उज्जयिन्यां महाकालमोंकारे परमेश्वरम्।
केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशंकरम्-
वाराणस्याञ्च विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे।
वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकावने-
सेतुबन्धे च रामेशं घुश्मेशञ्च शिवालये ॥—शिवपुराण

र्जुन, उज्जयिनी में महाकाल, ओंकार में परमेश्वर, हिमालय में केदारनाथ, डाकिनी में भीमशंकर वाराणसी में विश्वनाथ, गौतमी नदी पर त्र्यम्बक, चिताभूमि में वैद्यनाथ, दारुकावन में नागेश, सेतुबन्ध में रामेश्वरम् तथा शिवालय में घुश्मेश—ये बारह ज्योतिर्लिङ्ग केदारनाथ से लेकर रामेश्वरम् तक तथा सोमनाथ से लेकर वैद्यनाथ तक फैले हुए हैं। सप्तपुरियों* को लीजिये। अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कांची, अवन्तिका और द्वारिका ये सात पुरियां हैं। ये भी सारे भारत को घेरे हुए हैं। शङ्कराचार्य मालावार में पैदा हुए, परन्तु उन्होंने अपने सिद्धान्त के प्रचारार्थ चार मठ‡ भारत के चार कोनों पर स्थापित किये। चार मठ और चार धाम§ भारत की एकता का उज्ज्वल प्रमाण देते हैं। सब हिन्दुओं का पितृ-तर्पण गया में और मातृ-तर्पण सिद्धपुर में होता है। क्या यह बात यह नहीं बताती कि भारत एक देश है? क्या एकता की यह आधारशिला अंगरेज़ शासन ने रक्खी है? क्या अंगरेज़ों के आगमन से पूर्व हिन्दू लोग भारत को एक देश न मानते थे? पश्चिम की आंख से देखने वालों को मैं गर्वपूर्वक कहूँगा कि मिश्र के पिरामिड, बैबिलौन का टावर, चीन की दीवार, सालोमन का मन्दिर और पीटर का गिर्जाघर बनने से कहीं पूर्व भारतीय विचारकों ने सात नदी सप्त पर्वत और सात पुरी के रूप में भारतीय एकता का निर्माण

---

* अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका।
पुरीं द्वारिकावती चैव सप्तैताः मोक्षदायिका: ॥

‡ द्वारिका में शारदा मठ, जगन्नाथ में गोवर्धन मठ बद्रीनाथ में जोशी मठ और मैसूर में शृंगेरी मठ।

§ द्वारिका, जगन्नाथ, बद्रीनाथ, और रामेश्वरम्।

किया था। जरथुस्त्र का प्रादुर्भाव, कन्फ्यूशस की शिक्षायें सुकरात के वार्तालाप, मूसा की दस आज्ञायें और ईसा के पर्वतीय उपदेश को सुनने से शताब्दियों पूर्व भगवान् शिव ने शक्ति को अपने हाथ में लेकर उसके वितरण द्वारा भारतीय एकता की आधारशिला रक्खी थी। देवी भागवत में कथा आती है कि कृतयुग में दक्ष प्रजापति ने कनखल तीर्थ में एक बड़ा यज्ञ रचाया। उस यज्ञ में सब देवता और ऋषि बुलाये गये, परन्तु दक्ष ने शिवजी को नहीं बुलाया और 'कपाली' कहकर उनका अपमान किया। यद्यपि शिव की पत्नी सती दक्ष की कन्या थी, परन्तु दक्ष ने उसे भी कपाली की पत्नी जान कर नहीं बुलाया। सती आश्चर्य्य से सोचने लगी "दक्ष मेरे पिता हैं। उन्होंने मुझे क्यों नहीं बुलाया ?" इसका कारण जानने वह शंकर के पास गई और आदर से बोली—'स्वामिन्! सुना है मेरे पिता के यहां यज्ञ है। सब ऋषि-मुनि गये हैं, फिर आप वहां क्यों नहीं गये ?" महेश्वर बोले—"देवी! तुम्हारे पिता मुझ से वैर रखते हैं। जो देवता उन्हें मान्य हैं, वही यज्ञ में गये हैं। बिना बुलाये दूसरे के यहां जाने से तिरस्कार होता है। अतः मैंने न जाना ही उचित समझा।" सती बोली—"हे शङ्कर! मैं अपने पिता के भाव को जानने के लिये यज्ञ में जाना चाहती हूँ। आप मुझे वहां जाने की आज्ञा दें।" शिवजी बोले—"देवि! यदि तुम्हारी ऐसी ही रुचि है तो, हे सुव्रते! तुम मेरे वचन से वहां शीघ्र जाओ।" सती को यज्ञ में देखकर दक्ष ने उसका कुछ भी आदर नहीं किया। अपमानित हुई सती अपने पिता से बोली-"तात! जिसकी कृपा से चराचर पवित्र हो जाता है, उस शङ्कर को आपने यज्ञ में क्यों नहीं बुलाया ?" सती के वचन सुन कर दक्ष क्रोध से बोला—"भद्रे! तू यहां क्यों आई ? तेरा यहां क्या

काम है ? सब लोग जानते हैं कि तुम्हारे शिव अमङ्गलीक हैं। भूत, प्रेत और पिशाचों के स्वामी हैं। इस कारण उस कुवेषधारी शिव को मैंने नहीं बुलाया। मैंने सोचा कि देवताओं और ऋषियों की सभा में उस कुवेशधारी का क्या काम ?" पति का अपमान सुनकर सती बोली—"स्वामी का अपमान सुनकर मुझे जीने से क्या काम ? मैं अभी अग्नि में प्रवेश कर देह त्याग करती हूँ।" स्वामि के चरणों का ध्यान करती हुई सती ने अपने को अग्नि की भेंट कर दिया। जब शिव को सती के देह-त्याग का समाचार मिला तो वे तुरन्त यज्ञस्थान पर पहुंचे और सती के शरीर को कन्धे पर रखकर सारे भारत की परिक्रमा की। परिक्रमा करते हुए जहां-जहां सती का अंग गिरा वहां-वहां शाक्तों के देवीपीठों का निर्माण हुआ। जहां सती की योनि गिरी वहां कामगिरी पर 'कामाख्या', जहां उसकी अंगुलियां गिरीं कलकत्ते में 'काली', जहां उसकी हथेली गिरी वाराणसी में 'अन्नपूर्णा' जहां उसकी जीभ गिरी कांगड़े में 'ज्वालामुखी', जहां उसका ब्रह्मरन्ध्र गिरा हिंगोल नदी के किनारे 'हिंगुलादेवी', इसी प्रकार विन्ध्याचल में विन्ध्य-वासिनी, नीलगिरी में नीलाम्बरी, श्रीनगर में जांबुनदेश्वरी, नैपाल में गुह्यकाली, कोल्हापुर में महालक्ष्मी, मदुरा में मीनाक्षी, गया में मङ्गला, कुरुक्षेत्र में स्थाणुप्रिया और कनखल में उमा का स्थान बना। शिव चाहे परमात्मा हो अथवा पुरुष, यहां इसकी विवेचना नहीं करनी। इस कथा का अभिप्राय स्पष्ट है। शिव ने सतीरूप शक्ति को ५१ हिस्सों में बांट कर उसे भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों में स्थापित कर कामाख्या से हिंगुलाज तक तथा कांगड़ा से मदुरा तक समस्त भारत की अखण्डता कायम की है। जिस व्यक्ति ने इस कथा के आधार पर तीर्थ बसाये और उनमें दैवीय भावना भरी

उसने सारे भारत का भली प्रकार भ्रमण किया होगा। बिना घूमे उसने यह कैसे जाना कि कांगड़ा में ज्वालामुखी पर्वत है और वहां पृथ्वी में से आग निकलती है। अतः वहां पर सती की जीभ गिरना निर्धारित किया। ब्रह्मरन्ध्र शरीर में सबसे भारी वस्तु है और श्वेत रंग की है। धातुओं में पारा भारी और श्वेत रंग का है। यह हिंगुलाज से आता है। पारे को वहां से निकलता देख कर ही सती के ब्रह्मरन्ध्र गिरने की कल्पना की गई। इस प्रकार देवी-पीठों की स्थापना के समय भारतीय एकता का विचार निश्चित रूप से विद्यमान था। देवी भागवत में आगे लिखा है "अथवा सर्वाणि क्षेत्राणि काश्यां सन्ति नगोत्तम। तत्र नित्यं वसेन्नित्यं देवीभक्तिपरायणः।' ये देवीपीठ पहले तो भारत के भिन्न-भिन्न भागों में बसाये गये और फिर 'उन सब तीर्थों को काशी में एक साथ बसाया गया। आज तक काशी के अनेक मुहल्लों के नाम विविध देवीपीठों के नाम से हैं, यथा कर्मच्छा=कामाख्या। यह एक बात ही कि भारत के भिन्न-भिन्न हिस्सों में बिखरे हुए तीर्थों के नामों से काशी के मुहल्लों का नामकरण किया गया, आसेतु हिमाचल भारतभूमि की एकता का ज्वलन्त प्रमाण है।

यहां एक बात ध्यान देने योग्य है। इस देश में हिन्दू से बढ़ कर देशभक्त और राष्ट्रीय दूसरा कोई नहीं हो सकता। कारण यह है कि हिन्दू चाहे किसी भी धर्म को माने वह अपने पुण्य तीर्थों में घूमता हुआ सदा भारत की सीमा में ही रहेगा। उसे इससे बाहर जाने की आवश्यकता न होगी। इस प्रकार हिन्दू का धर्म उस की राष्ट्रीयता में बाधक नहीं हो सकता, परन्तु एक मुसलमान और ईसाई में जब अपने तीर्थों के दर्शन की लालसा उठेगी तो उसे भारत की सीमाओं से बाहर ही जाना पड़ेगा। उसका धर्म

उनकी राष्ट्रीयता में बाधा बन कर खड़ा होगा। यही कारण है कि मुसलमान और ईसाई इस देश में रहते हुए भी बहिर्मुखी होने से कभी पूर्ण राष्ट्रीय और पूर्ण देशभक्त नहीं हो सकते। और यही कारण है कि इस देश की एकता की चिन्ता जितनी हिन्दू को है उतनी दूसरे किसी को नहीं है। भारत हमारी केवल पितृभूमि ही नहीं है, अपितु हमारी पुण्यभूमि भी यही है। इसी भूमि में हमारे धर्मों का आविर्भाव हुआ। यहीं पर वैदिक युग के ऋषियों से लेकर दयानन्द पर्यन्त, बुद्ध से नागसेन पर्यन्त जिन से महावीर पर्यन्त, चैतन्य से नानक पर्यन्त और रामदास से रामतीर्थ पर्यन्त, सभी गुरु और देवता जनमे और बढ़े। यहां के वन और उपबन, पर्वत और उपत्यकायें, नदियां और घाटियां उनकी जीवन कथाओं से अमर हो चुकी हैं! इसी प्रांगण में भारतीय संस्कृति की कलियां हँस-हँस कर खिलीं। मानव सृष्टि में जब सभ्यता का सूर्य उदित हुआ तो उसकी प्रथम रश्मियां इसी देश के आकाश पर प्रकाशित हुईं। संस्कृति की जब बयार बही तो वह इसी देश के उपवनों से हो कर गुजरी। मनुष्य ने जब होंठ खोले और अपने मुख से शब्दों का उच्चारण किया तो वह सर्व प्रथम मानवध्वनि सामगान के रूप में इसी देश के तपोवनों में तप कर रहे ऋषियों के मुख से प्रतिध्वनित हुई। अपनी प्राचीनता हम नहीं जानते, पर हिमालय की बर्फीली तहें उसे बता सकती हैं। अपना इतिहास हम सुना नहीं सकते पर गङ्गा की कलकल निनादिनी धारायें उसे सुना सकती हैं। हिन्दू और हिमालय की प्राचीनता एक समान हैं। हमें नहीं मालूम कि हम कहां से आये, पर जब हमने आंखें उघाड़ीं तो इस पुण्य भूमि का राजमुकुट किन्हीं दैवीय हाथों द्वारा हमने अपने ही

मस्तक पर बंधा देखा। इस देश की नदियों और पर्वतों, जलाशयों और उपवनों के नाम हमने ही रक्खे। हम से पुराना इस देश में कोई है ही नहीं। हमने अपने जीवन का प्रथम ग्रास इसी के अन्न का खाया। इसी के जल से पहली प्यास बुझाई और यहीं की वायु में सर्वप्रथम सांस लिया। हमने ही हिमालय को हिमालय और गङ्गा को गङ्गा पुकारा। इस देश को चाहे आर्यावर्त्त कहो, चाहे जम्बु द्वीप बोलो, चाहे भारतवर्ष पुकारो और चाहे हिन्दुस्थान कहो—ये सब नाम हमारे ही रक्खे हुए हैं। जो हमें बाहर से आया बताते हैं वे इस देश का पुराना नाम तो बतायें! वे यह तो बतायें कि तब गङ्गा और हिमालय किस नाम से पुकारे जाते थे? यदि यह मान भी लें कि हम से पूर्व यहां द्रविड़ लोग रहते थे तो आज सहस्रों वर्षों के परस्पर सहवास के कारण दोनों के देवता, धर्म, भाषा. संस्कृति, कला, इतिहास सब कुछ एक हो गया है। पारस्परिक विवाह सम्बन्ध द्वारा रक्त तक एक हो चुका है। वे हमारे हो गये हैं और हम उनके बन गये हैं। हमारे राम उनके अवतार हैं। हमारी ही गीता उनकी धर्म पुस्तक है। हमारे शिव उनके आराध्य देव हैं। रामायण और महाभारत की कथायें उन्हें स्फूर्ति देने लगी हैं, उनकी भवन-निर्माण-कला हमने अपनी कहकर स्वीकार कर ली है। अब किसी तीसरी शक्ति को हमारे में फूट डालने का साहस हो नहीं हो सकता। शताब्दियों से बहती हुई स्नेह की निर्मल मन्दाकिनी में अतीत का दुःख विलीन हो चुका है।

संसार की दूसरी जातियां अपने देश को 'पितृभूमि' के नाम से पुकारती हैं, परन्तु हिन्दू इस देश को 'मातृभूमि' कहते हैं। हमारे लिये यह देश सराय व धर्मशाला नहीं है। यह सुख भोगने

का साधन मात्र भी नहीं है। माता के समान पालन करने के कारण यह देश मातृ-तुल्य है। वेद में कहा है "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।" यह भूमि हमारी माता है और हम इसके पुत्र हैं। वेद की भाषा में इस भूमि पर रहने का अधिकारी वही है जो इसे माता करके जानता है। हमने इस धरती को 'मां' कह कर पुकारा और इसने हमें 'वत्स' कहकर अपने प्रेमाञ्चल में लपेट लिया। इसी कारण आज तक हिन्दू इस देश को भारत-माता कह कर पुकारता है और इसी कारण हिन्दुस्थान के मान-चित्र में माता की प्रतिमा बनाई जाती है। हिमालय इस मां का मस्तक है। गौरीशंकर मुकुट है। पंजाब और बंगाल दो विशाल भुजायें हैं। गंगा और सिन्धु के दो डैल्टे दो पंजे हैं। यू० पी० मस्तिष्क है बिहार दिल है। आंध्र और महाराष्ट्र दो उरू हैं। तामिल और केरल दो टांगें हैं। रामेश्वरम् और कन्याकुमारी दो चरण हैं। लंका इस माता के चरणों में नतमस्तक भक्त है। रत्नाकर और महोदधि की जलधारायें इसके चरण धोने के लिये बहते हुए अनन्त जलप्रवाह है। नर्मदा इसकी मेखला है। गङ्गा, यमुना और सरस्वती की तीन धारायें यज्ञोपवीत के तीन पवित्र सूत्र हैं। तक्षशिला और नवद्वीप तथा काशी और काञ्ची इस का अन्तःकरण-चतुष्टय है काश्मीर की केसरपंक्ति इसके मस्तक का कुंकुम है। हिमालय के हिमाच्छादित शिखरों पर सूय की किरणों से बनती हुई स्वर्णिम रेखायें भुवन-मन-मोहिनी हमारी माँ का सौभाग्य सिन्दूर है। जब तक इसका मस्तक हिमालय खड़ा है और सौभाग्य रेखा बनाने वाला सूर्य विद्यमान है, तब तक संसार की कोई शक्ति नहीं जो इसे खण्ड-खण्ड कर सके। इस देश से सुन्दर देश हो सकते होंगे। इससे अच्छी

भूमि भी होगी, परन्तु हमारी मां होने से हमारे लिये यह सब से बढ़ कर है। यह गर्व हिन्दुओं को ही प्राप्त है कि हम ने माता और मातृभूमि को स्वर्ग से भी ऊंचा स्थान दिया है। इसी लिये स्वतन्त्र हिन्दू राज्य नैपाल के सिक्कों और टिकटों पर आज भी लिखा है "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी"। मातृभक्ति का ऐसा सुन्दर उदाहरण विश्व में कहीं ढूंढे न मिलेगा। इसी उद्देश्य को लेकर हमारी राष्ट्रीय सभाओं में 'बन्देमातरम्' गीत गाया जाता है। इसी से अथर्ववेद के 'पृथिवि सूक्त' में कहा है कि यह भूमि पहले सलिलार्णव के नीचे छिपी हुई थी। जिन्होंने इसे मां कह कर पुकारा उनके लिये यह प्रकट हुई। सुपुत्रों के लिये यह अमृत से परिपूर्ण है और दूसरों के लिये जड़मात्र है। भारत हमारी मां है। ३३ करोड़ देवों में इसकी गणना है। देवी की पूजा अखण्डित प्रतिमा के रूप में ही हो सकती है। टूटी हुई मूर्ति पूजा के योग्य नहीं रहती और उसे पूजने वाला पापी होता है। अतः भारतमाता को पूजा के योग्य बनाये रखने के लिये हमारा यह राष्ट्रीय धर्म है कि हम इस देवी का अंगच्छेद न होने देवें। महारानी विक्टोरिया ने वचन दिया था कि अंगरेज़ सरकार किसी के धर्म में हस्तक्षेप न करेगी। हम कहते हैं कि अखण्ड-भारत की पूजा हमारा धार्मिक अंग है। यदि सरकार अपने दिये गये वचनों के प्रति सच्ची है तो वह स्पष्टतया घोषणा करे कि हम भारत के टुकड़े कभी नहीं होने देंगे।

भारत की यह अखण्डता केवल ज्ञानचर्चा ही नहीं है। वैदिक काल से 'सिन्धु' शब्द हिन्दुस्तान की स्वाभाविक सीमाओं 'सिन्धु नदी से समुन्द्र पर्य्यन्त' के लिये व्यवहृत होता आया है। ब्राह्मण ग्रन्थों में "पृथिव्यै समुद्रपर्य्यन्तया एकराडिति" यह वाक्य

भारतीय एकता की स्पष्ट व्याख्या कर रहा है। ये बातें केवल ग्रन्थों में ही नहीं लिखी रहीं। बड़े-बड़े हिन्दू सम्राटों ने 'चक्रवर्ती' की पदवी धारण कर समूचे राष्ट्र पर 'सार्वभौम' राज्य स्थापित भी किया है। मौर्यों का उद्देश्य सारे भारत को एक कर, उस में एकानुभूति उत्पन्न कर 'चातुरन्त राज्य' ❀ की स्थापना करना था। कम्बोज से कर्नाटक तक तथा काठियावाड़ से कलिंग तक का सारा प्रदेश एक छत्र के नीचे लाकर कौटिल्य ने चातुरन्त राज्य का आदर्श पूरा किया था। आदि-कवि वाल्मीकि के उद्धरण के साथ मैं इस प्रकरण को समाप्त करता हूँ। वाल्मीकि ऋषि लिखते हैं "इक्ष्वाकूणामियं भूमिः सशैलवनकानना। मृगपक्षिमनुष्याणां निग्रहानुग्रहेष्वपि।" जंगलों और पर्वतों से आच्छादित और सागरों से घिरी हुई इस भूमि के स्वामी इक्ष्वाकु वंशीय राजा हैं। इस देश के पशु, पक्षी और मनुष्यों पर उन्हीं का अधिकार है। उन पर निग्रह और अनुग्रह करना भी उन्हीं का काम है। भारतीय एकता के विषय में वाल्मीकि के समय में भी यह विचार प्रचलित था, परन्तु आज हमारे पूर्वजों द्वारा किये गये सब प्रयत्न विफल हुआ चाहते हैं। 'जिन्ना ऐन्ड कम्पनी' इस एकता को नष्ट करने के लिये एड़ी-चोटी का यत्न कर रही है। मैं स्पष्ट कहता हूँ कि जब तक एक भी हिन्दू जीवित है और उस की धमनियों में हिन्दू रक्त प्रवाहित होता है तब तक पाकिस्तान कभी सच्चा न उतरने वाला स्वप्न ही रहेगा।

जिन्ना साहब कहते हैं—'हमें हिन्दुओं ने बहुत सताया है। कांग्रेस राज्य, जो वस्तुतः हिन्दू-राज्य था उसमें मुसलमानों के स्वत्वों को निर्दयतापूर्वक कुचला गया है! अब हमारे कष्ट असह्य

❀ चातुरन्त—चारों कोनों तक फैला हुआ?

हो चुके हैं। अतः हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न का हल पाकिस्तान के अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं है'। आश्चर्य है कि जिन्ना साहब उस कांग्रेस राज्य को भी हिन्दू राज्य बताते हैं, जिसने मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिये राष्ट्रीयता की आड़ में हिन्दुओं पर इस प्रकार अत्याचार किये कि उसी से प्रोत्साहित होकर आज जिन्ना साहब को पकिस्तानी आंदोलन चलाने का साहस हुआ है 'हिन्दू' और 'अत्याचार'—ये दोनों परस्पर विरोधी शब्द हैं। हिन्दू पर तो आरोप ही यह है कि वह संसार भर के प्रति दयावान् है, पर अपने पर इसे दया नहीं आती। हिन्दू के समान उदार और सहिष्णु इस धरती पर मिलना असम्भव है। हमने विदेशियों को बसने की स्वतन्त्रता दी और वे हमारे शासक ही बन बैठे। हिन्दू राजाओं ने उदारतावश मस्जिदें बनवाई और वे ही हिन्दू धर्म पर चोट करने को केन्द्रस्थान बन गई। मुसलमान हमारे मेलों में खड़े होकर हमारे धर्म पर कटाक्ष करते हैं, पर हमने आज तक किसी पर आक्रमण नहीं किया। दूसरी ओर मुसलमानों ने दर्जनों हिन्दू प्रचारक छुरी के घाट उतार दिये, फिर भी जिन्ना कहते हैं कि हिन्दू अत्याचारी हैं। हिन्दू मन्दिरों के पास से पर-धर्मावलम्बियों के शोक और हर्ष सूचक जुलूस गुज़रते हैं। संसार हमारा साक्षी है कि हम ने आज तक किसी पर चोट नहीं की। दूसरी ओर मस्जिदों से बरातों और जुलूसों पर पत्थर बरसाने की बातें आये-दिन पत्रों में पढ़ी जाती हैं, फिर भी जिन्ना कहते हैं कि हिन्दू असहिष्णु हैं। मुस्लिम-बहुमत-प्रान्तों में हिन्दुओं का जीवन दुःखी देखकर हिन्दू सभा ने आवाज़ उठाई कि इन प्रांतों में शासन और व्यवस्था का काम गवर्नर अपने हाथ में ले लें। यह सुन कर मुसलमान चौंक उठे और उन्होने हिन्दू-बहुमत-प्रान्तों में, अहमदा-

बाद, बम्बई, कानपुर, जबलपुर, मदुरा और बिहारशरीफ़ में दंगे करके जताया कि जहां उनकी संख्या अत्यल्प है तथा जहां शासन और व्यवस्था गवर्नरों के हाथ में है वहां भी वे गड़बड़ी पैदा कर सकते हैं। फिर भी जिन्ना कहते हैं कि हिन्दू अन्यायी हैं। सीमांत की सी लूट, सिन्ध का सा हत्याकांड और बङ्गाल का सा अपहरण किसी हिन्दू प्रान्त में नहीं होता, फिर भी मुस्लिम मफ़ाद को पामाल करने का अपराध हिन्दुओं के माथे मढ़ा जाता है। मैं कहता हूँ कि यदि जिन्ना साहब सचमुच ही अपनी बात के पक्के हैं और वे वस्तुतः ऐसा ही समझते हैं कि हिन्दू मुसलमानों को सताते हैं, तो हिन्दू और मुस्लिम भारत पृथक्-पृथक् बस जाने पर ३० करोड़ बहादुर हिन्दुओं की गोद में पड़ा हुआ पाकिस्तान कितने घण्टे जी सकेगा? हिन्दुस्तान के टुकड़े हो जाने पर भी हिन्दू-मुस्लिम समस्या हल न होगी, प्रत्युत वह अब से भी अधिक पेचीदा हो जायेगी। पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में अपनी-अपनी श्रेष्ठता जताने के लिये शाश्वत् युद्ध होते रहेंगे। दोनों देशों में बसे हुए अल्पमतों का जीवन असह्य हो जायेगा, क्योंकि वे एक-दूसरे के लिये Hostages का काम करेंगे। असल बात यह है कि मुसलमान ऐसे किसी भी शासनविधान को मानना नहीं चाहते जिस में उनकी स्थिति अल्पमत जाति के रूप में कायम की जाये। यदि यही बात है तो पञ्जाब, सिंध सीमांत और बङ्गाल के हिन्दू भी अल्पमत जाति का जीवन बिताने पर बाधित क्यों किये जायें? क्यों नहीं मिश्र में ईसाईयों, टर्की में आर्मीनियन्स और पैलस्टाईन में यहूदियों के लिये भी पृथक् देश बसाये जायें? फिर पैलस्टाईन में यहूदियों को पृथक् राष्ट्र मनाने से मुस्लिम लीग क्यों कतराती है? वह 'पैलस्टाईन दिवस' मना कर उसके विभाजन

का विरोध भी क्यों करती है ? बात साफ़ है कि वह पाकिस्तान का शोर मचा कर हिन्दू बहुमत का शासन नहीं होने देना चाहती। यदि लीग की यही चाल है तो मैं निःसंकोच भाव से घोषित करता हूँ कि संसार में कोई शक्ति नहीं जो बंगाल के ४५% और पञ्जाब के ४२% हिन्दुओं को मुसलमानों का दास बना कर रख सके। बंगालियों ने 'बंगभंग आंदोलन' के समय अपनी शक्ति का परिचय दिया है और पञ्जाब के सिक्ख, कायम हुए मुस्लिम राज्य को नष्ट कर सिक्ख राज्य की स्थापना कर, अपनी ताकत का लोहा दिखा चुके हैं। जिन्ना साहब को मालूम होना चाहिये कि पाकिस्तान कायम हो जाने पर भी केवल ५४३१५६५५ मुसलमान हिंदू शासन से बच सकेंगे। शेष २२७७६७१५ मुसलमानों को हिन्दू शासन के नीचे ही रहना पड़ेगा। यह कहना कि पाकिस्तान बस जाने पर Minority Rights के विषय में समझौता कर लिया जायेगा, निरर्थक है, क्योंकि उस निर्णय को मनवाने के लिये पाकिस्तान और हिंदुस्थान-दोनों पर कोई सुदृढ़ केन्द्रीय सरकार न रहने से गृहयुद्ध अवश्यम्भावी होगा। यदि उस गृहयुद्ध का परिणाम वही निकला जो अमेरिका में हुआ अर्थात् 'फेडरेशन' की स्थापना तो पाकिस्तानी बच्चे की दूध के दांत टूटने से पूर्व ही मृत्यु हो जायेगी। इसलिये मैं कहता हूं कि हिंदुस्थान का विभाजन उतना ही असम्भव है जितना हिमालय का स्थान-परिवर्त्तन। अन्य देशों का इतिहास भी हमें यही सिखाता है। आस्ट्रिया, प्रशिया और रशिया ने पोलैण्ड को बांट खाया था। क्या पोलैण्ड इतने से ही मिट गया ? नहीं, पोल देशभक्त लड़ते रहे और अन्ततः पोलैण्ड एक होकर रहा। और उसके एक बनने के समय उपरोक्त तीनों राज्यों का ध्वंस हो चुका था। गत महायुद्ध की समाप्ति

पर मित्र-राष्ट्रों ने जर्मनी को दण्ड देने के लिये उसके टुकड़े कर दिये थे। क्या इससे जर्मन जाति मर गई? नहीं, बीस वर्ष में ही १९१८ की लाश जीवित बनकर खड़ी हो गई और उसका परिणाम वर्त्तमान विश्वयुद्ध है। यदि ३० करोड़ हिंदुओं के देश को काटने का यत्न किया गया—जो दुःसाहस औरंगज़ेब और तैमूरलंग भी अपने समय में नहीं कर सके—उसका परिणाम कितना भयानक होगा इसकी कल्पना इतिहास को जानने वाला सुगमता से कर सकता है। अंगरेज़ राजनीतिज्ञों का यह कहना कि दिल से तो हम भी भारत की अखण्डता के पक्षपाती हैं, परन्तु अल्पमत की रक्षा करना हमारा फ़र्ज़ है और अल्पमत की सन्तुष्टि इसके अतिरिक्त और किसी उपाय से नहीं हो सकती कि उन्हें भारतीय संघ (Indian Union) से पृथक् होने के लिये आत्म-निर्णय का अधिकार दे दिया जाये। मैं इस बात को नहीं मान सकता हूं। यदि अंगरेज़ सरकार सचमुच एकता की समर्थक है, तो जब वह हिटलर के समान शक्तिशाली व्यक्ति को कुचलने पर तुली है और जब वह जापान के समान बलशाली राष्ट्र को नष्ट करने के लिये वचनबद्ध है, तो क्या वह भारतीय एकता के शत्रु जिन्ना और उन की लीग को वश में नहीं कर सकती? मुझे कहते दुःख होता है कि अंगरेज़ जो संसार भर को एक राष्ट्र बनाने की योजनायें तैयार कर रहे हैं, वे हिंदुस्थान में अनादि काल से एक चले आ रहे राष्ट्र को छिन्न-भिन्न करने के लिये प्रयत्नशील हैं।

इनकी पाकिस्तान योजना भी एक विचित्र पहेली है। पञ्जाब, सिन्ध, बिलोचिस्तान, सीमान्त काश्मीर और बंगाल इस लिये दे दो, क्योंकि इन हिस्सों में मुसलमानों का बहुमत है। दिल्ली और आगरा इसलिये दे दो, क्योंकि वहां कभी मुग़लों ने

शासन किया था। अजमेर इस लिये कि वहां चिश्ती साहब की दरगाह है। जूनागढ़ इस लिये कि वहां नवाब की हकूमत है। हैद्राबाद इस लिये कि वह मुग़लिया खान्दान का अन्तिम चिराग़ हैं। आन्ध्र और मछलीपट्टम का भाग भी निजाम साहब को दे दिया जाये, जिससे वे समुद्र तक टहल आया करें। हिन्दुस्थान का अच्छा भाग पाकिस्तानियों को सौंप दिया जावे। कलकत्ता, कराची और मछलीपट्टम मुस्लिम भारत के पास जायें, परन्तु आश्चर्य है कि जिन्ना साहब अपने को क्यों भूल गये? बम्बई की 'मालाबार हिल' तो हिन्दुस्थान में रह गई। उसे पाकिस्तान में शामिल क्यों नहीं किया? पाकिस्तान का पिता तो हिन्दुस्थान में ही रह गया, फिर पाकिस्तानी बच्चा किसकी आशा पर जियेगा? यदि यही रफ्तार जारी रही तो कोई आश्चर्य नहीं कि एक दिन मुस्लिम लीग की ओर से यह मांग पेश कर दी जाये कि समस्त भारत मुस्लिम भारत में सम्मिलित किया जाये, क्योंकि अंगरेज़ों से पूर्व भारत के शासक मुसलमान थे। इससे पूर्व कि मुस्लिम-लीग की ओर से ऐसी कोई बेहूदा मांग पेश की जाये मैं हिन्दुओं से कहूँगा कि वे साफ़ शब्दों में घोषित कर दें कि राज्यों का बँटवारा बातों से नहीं, ताकत से हुआ करता है। मुसलमानों से पूर्व इस देश के स्वामी हम थे, किसी की कृपा से नहीं, अपने बाहु-बल से। अंगरेज़ों के आगमन के समय भी भारत हमारे अधीन था। बड़े-बड़े मुस्लिम नवाब और सरदार हमें 'कर' देते थे और मुग़ल बादशाह तो हमारा कैदी ही था, किसी की दया से नहीं, हिन्दुत्व की अजेय शक्ति के कारण। इसलिये हम निःसंकोच घोषणा करते हैं कि अन्य लोग इस देश में रह सकते हैं, वे नागरिक

बन सकते हैं, नागरिकता के अधिकार भी उन्हें मिल सकते हैं, परन्तु वे हमारे शासक बनकर नहीं रह सकते।

अंगरेज़ी राजनीतिज्ञ और कुछ भारतीय देश भक्त हम से आकर कहते हैं कि आखिर मुसलमान एक महत्वपूर्ण अल्पमत है अतः उस का विशेष ध्यान आप को रखना पड़ेगा। ऐसे लोगों से हमारा इतना ही निवेदन है कि राष्ट्रसंघ (League of Nations) ने अल्पमत की जो परिभाषा की है उसके अनुसार किसी भी अल्पमत को उस भूखण्ड में बसी हुई बहुमत वाली जाति से मूलतः भिन्न होना चाहिये। मुसलमान, हिन्दुओं से केवल धर्म में भिन्न होने से ही अल्पमत-जाति स्वीकार नहीं किये जा सकते। यदि इन राजनीतिज्ञों के कहने से मुसलमानों को अल्पमत मान भी लें तो भी हमें यह तो कहना ही पड़ेगा कि मुसलमान इस देश में महत्वपूर्ण अल्पमत नहीं हैं, क्योंकि वे केवल अल्पमत न होकर चार प्रांतों में बहुमत भी हैं। हिन्दू-बहुमत-प्रांतों में मुसलमानों की संख्या लगभग दो करोड़ है और मुस्लिम-बहुमत-प्रांतों में केवल बंगाल में ही दो करोड़ से ऊपर हिन्दू रहते हैं। यदि इसमें मुस्लिम रियासतें भी सम्मिलित की जायें तो यह संख्या और बढ़ जायेगी, क्योंकि मुसलमान रियासतों में अधिकतर शासक ही मुसलमान हैं, जनता प्रायः हिन्दू ही है। इस लिये देशभक्तों और राजनीतिज्ञों से मैं कहना चाहता हूँ कि हिंदू ही इस देश में महत्वपूर्ण बहुमत हैं और हिन्दू ही महत्वपूर्ण अल्पमत भी हैं। अल्पमत की समस्या जितनी हिन्दू के लिये है, उतनी मुसलमान के लिये नहीं है। अतः अल्पमत के नाते यदि कोई रियायत दी जाये तो वह मुसलमान को नहीं, हिन्दू को ही मिलनी चाहिये।

हमारी इन युक्तियों को सुनकर लीगियों ने नया पैंतरा बदला

है। अब वह कहने लगे हैं कि हम कोई अल्पमत नहीं हैं। आठ करोड़ मुसलमान तो स्वतः एक राष्ट्र है। जब हम राष्ट्र हैं तो हमारा कोई पृथक् देश भी होना चाहिये और वह 'पाकिस्तान' के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं हो सकता। जिन्ना साहब ने मुसलमानों के पृथक् राष्ट्र होने की नई खोज की है। मेरा विचार है कि इस खोज पर 'नोबल पुरस्कार' इस बार इन्हें ही मिलना चाहिये। आठ करोड़ मुसलमानों में से केवल दस प्रतिशत ही बाहर से आये हैं। वे भी सदियों से यहां रहते हुए यहीं के बन गये हैं। शेष ९० प्रतिशत हिन्दू से मुसलमान बने हैं। उनकी नस्ल, भाषा, जात, इतिहास—सब वही है जो उनके पड़ोसी हिन्दू का है, केवल धर्म ही हिन्दू से भिन्न है यदि धर्म-भेद ही राष्ट्रीयता की कसौटी है तब तो मुसलमानों में भी दर्जनों राष्ट्र हो जायेंगे। फिर तो जिन्ना साहब के छोटे से पाकिस्तान में शियास्थान, सुन्नीस्थान मोमिन-स्थान, भोरास्थान आदि न जाने कितने पृथक् राष्ट्र बनाने पड़ेंगे? अपनी थोथी युक्तियों को रेत की दीवार की तरह गिरते देख कर जिन्ना साहब ने अपना गुप्त अस्त्र निकाला है। उन्होंने अब हिटलर की तरह धमकियां देनी आरम्भ कर दी हैं कि या तो $\frac{1}{3}$ हिन्दुस्थान हमें दे दो, वर्ना $\frac{1}{4}$ भी ले लेंगे। ऐसी धमकियों का हमारे पास केवल एक ही उत्तर है कि या तो भारत में सच्चे भारतीय बन कर रहो, नहीं तो जो देश अच्छा लगता हो वहां चले जाओ। कल तक मुसलमान गाते थे 'हिन्दी हैं हम' वतन है हिन्दोस्तां हमारा, अब इन्होंने इसे बदल कर गाना शुरू किया है 'मुस्लिम हैं हम' वतन है सारा जहां हमारा।' जब मुसलमानों ने ही इस देश के प्रति अपने विचार बदल लिये हैं तो हम भी यह कहने को विवश हैं 'सारा जहां तुम्हारा, हिन्दोस्तां हमारा।'

यहाँ पाकिस्तान के विषय में कांग्रेसी नीति की विवेचना कर लेना भी ज़रूरी है। हिन्दुसभा, आर्य्यसमाज, सिक्ख लीग, क्रिश्चियन ऐसोसियेशन तथा निर्दल सम्मेलन—सभी ने पाकिस्तान का घोर विरोध किया है और इस पर अपनी-अपनी संस्था की निश्चित नीति व्यक्त की है। परन्तु मुस्लिम लीग के लाहौर अधिवेशन के ठीक बाद ही रामगढ़ में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ, पर कांग्रेस ने न केवल अपनी नीति ही स्पष्ट नहीं की, प्रत्युत इस विषय पर सोचने का भी कष्ट नहीं किया। याद रखिये, इन्होंने लार्ड जैटलैण्ड के प्रति सहानुभूति का प्रस्ताव तो पास किया, परन्तु देश के विभाजन पर सोचने के लिये इन नेताओं के पास समय न था। एबीसीनिया, चीन. स्पेन, पैलस्टाईन, चैकोस्लावेकिया और पोलैंड आदि के प्रति अपनी नीति प्रकट करने के लिए कांग्रेस ने कार्यकारिणी की विशेष बैठकें करके प्रस्ताव पास किये हैं, परन्तु इस महत्वपूर्ण विषय पर अपनी नीति प्रकट करना भी आवश्यक नहीं समझा गया। आप कहेंगे कि डा० राजेन्द्रप्रसाद जी तथा आचार्य कृपलानी आदि ने तो पाकिस्तान का खुला विरोध किया है, परन्तु ये तो इनके व्यक्तिगत विचार हैं। साम्प्रदायिक निर्णय को भी पहले "Anti-national, Anti-Democratic तथा Mischievous" कहा गया था, परन्तु जब डा० अंसारी ने काँग्रेस से त्यागपत्र देने की धमकी दी तो एक अंसारी पर ३० करोड़ हिंदुओं को बेच कर "Neither accept nor reject" का नया फार्मूला बनाया गया। उसी साम्प्रदायिक निर्णय द्वारा दी गई सीटों पर चुनाव लड़ कर उसे स्वीकार कर लिया और हम से कहा यह गया कि नये विधान के साथ साम्प्रदायिक निर्णय भी टूट जायगा। आज पंजाब और बंगाल के हिन्दुओं से पूछिये कि

यह निर्णय टूट गया है अथवा दृढ़ हो गया है। सर क्रिप्स द्वारा लाई गई ब्रिटिश योजना के अनुसार साम्प्रदायिक निर्णय 'Settled fact' हो चुका है। 'विधाननिर्मातृ परिषद्' के सदस्यों का चुनाव इसी सांप्रदायिक निर्णय द्वारा होना लिखा गया है और काँग्रेस ने इस पर कोई आपत्ति नहीं की, जब कि हिन्दुसभा ने इस का घोर विरोध किया है। कौन जानता है कि कल को कांग्रेस पाकिस्तान के विषय में भी नया फार्मूला बना कर इसे स्वीकार कर ले। मुझे यह कहते दुःख होता है कि कांगरेस ने सिद्धान्ततः पाकिस्तान स्वीकार कर लिया है। कांगरेस के तत्कालीन डिक्टेटर गाँधी जी ने ३० मार्च १९४० के 'हरिजन' में लिखा है........ 'I cannot understand the Muslims' opposition to the proposed Constituent Assembly. Are opponents afraid that the Muslims League will not be elected by Muslim voters? Do they not realise that any Muslim demand made by the Muslim delegates will be irresistible? *If the vast majority of Indian Muslims feel that they are not one nation with there Hindu and other bretheren who will be able to resist them?* अर्थात् यदि मुसलमानों का बहुमत यह अनुभव करता है कि हम हिन्दू तथा अन्य देशभाइयों के साथ मिल कर एक राष्ट्र नहीं हैं, तो उन्हें ऐसा करने से कौन रोक सकता है? ६ एप्रिल १९४० के 'हरिजन' में गाँधी जी फिर लिखते हैं—"Muslims will be entitled to dictate their own terms. Unless the rest of India wishes to engage in

internal fratricide, others will have to submit to Muslim dictation. I know no non-violent method of compelling obedience of eight crores of Muslims to the will of the rest may represent. *Muslims must have the same right of self-determination that the rest of India has. We are at present a joint-family. Any member may claim division.*" अर्थात् हिन्दुस्थान एक सम्मिलित परिवार है, जो पृथक् होना चाहे हो सकता है। २५ जनवरी १९४२ के 'हरिजन' में लिखा है—"I want now just to confine myself to the four Muslim-majority-provinces. *In them there is natural Pakistan,* in the sense that the permanent majority can rule the minority." अर्थात् चार मुस्लिम-बहुमत-प्रान्तों में गांधी जी स्वाभाविक पाकिस्तान मानते हैं और उन्होंने वहांके हिन्दुओं को मुस्लिम राज्य के सम्मुख आत्मसमर्पण करने की शिक्षा दी है। अभी सर क्रिप्स के आने पर कांग्रेस कार्यसमिति की ओर से जो प्रस्ताव मौ० आज़ाद ने क्रिप्स को दिया था, उसमें पाकिस्तान सिद्धांत रूप से स्वीकार कर लिया गया है। उसमें लिखा है—'Nevertheless the committee cannot think in terms of compelling the people in any territorial unit to remain in an Indian Union against their declared and established will." इससे स्पष्ट है कि भारतीय संघ से पृथक् होने वालों के प्रति कांग्रेस को सैद्धांतिक आक्षेप नहीं है. और नां ही

वह उन्हें संघ में रहने को बाधित करेगी ! १६ एप्रिल १६४२ के 'हरिजन' में गाँधी जी ने खुले शब्दों में पाकिस्तान स्वीकार करते हुए लिखा है—"If the vast majorty of Muslims regard themselves as a seperate nation having nothing in common with Hindus and others, *no power on earth compell them to think otherwise and if they want to partition India on that basis, they must have the partition* unless Hindus want to fight against such a division." गांधी जी ने इस लेख में न केवल पाकिस्तान को स्वीकार ही किया है प्रत्युत उसे स्थापित करने के लिये मुसलमानों को उभारा भी है और हिन्दुओं के विरोध को नगण्य बताया है। गांधी जी को संसार में ८ करोड़ मुसलमानों की शक्ति ऐसी प्रतीत होती है जिसे रोका नहीं जा सकता और ३० करोड़ हिन्दुओं को वे कुछ समझते ही नहीं हैं। गांधी जी भले न समझें परन्तु जिस दिन हिन्दू सरिता में उत्साह की बाढ़ आयेगी उस दिन यदि किसी मशरिकी या जिन्ना ने हज़ार दो हज़ार बेल्चाधारियों से उस प्रवाह को रोकने का साहस किया तो उसकी दशा ठीक वैसे ही होगी जैसी गङ्गा की प्रबल धारा को मन-दो-मन रेत के ढेर से रोकने वाले की होती है। कई कांगरेसी नेता और भी आगे तक गये हैं। श्री सत्यमूर्त्ति जी ने मुस्लिम राज्य को अंगरेज़ी राज्य से श्रेष्ठ बताया है। मैं स्पष्ट कहता हूँ कि हमारे लिये तो रामराज्य ही श्रेष्ठ है किन्तु यदि अंगरेज़ी राज्य और मुस्लिम राज्य में ही विकल्प उपस्थित हो तो अंगरेज़ी राज्य मुस्लिम राज्य से सौ गुना अच्छा है। गांधी जी को जिन्ना के राज्य में रहने में भी कोई आपत्ति नहीं है, क्योंकि आखिरकार जिन्ना साहब

भारत में ही उत्पन्न हुए हैं। यदि यही कसौटी है, तब तो भारत-मन्त्री मि० एमरी भी हिन्दुस्तान में–गोरखपुर में–ही पैदा हुए हैं। गांधी जी को जिन्ना साहिब के पाकिस्तानी राज्य का अभी संभवतः ज्ञान नहीं है। 'पंजाब मुस्लिम स्टूडेंट्स फिडरेशन' द्वारा प्रकाशित 'खिलाफ़त पाकिस्तान स्कीम' तथा खाकसार नेता अल्लामा मशरिकी के ट्रैक्ट 'अक्सरीयत या खून' में इसका भली-भांति दर्शन कराया गया है। मशरिकी साहब लिखते हैं—जिस तरह अशरफ उल-मख़लूकात की खिदमत और नशवोनुमाश्र के लिये हैवानात और नबातात को कुर्बान करना जायज़ है, उसी तरह इस्लामी मफ़ाद के लिये ग़ैर-मुस्लिमों को हर तरह इस्तेमाल करना एक इन्साफ है। हां, जिस तरह जानवरों को इस्तेमाल करने में बेरहमी ममनूह है, उसी तरह ग़ैर-मुस्लिमों को ख्वामख्वाह अज़ीयत पहुंचाना हर्गिज़ मुस्तहासन नहीं। अलबत्ता, जहां मुस्लिम मफ़ाद और ग़ैर-मुस्लिमों के मफ़ाद में टक्कर हो, वहां इस्लामी मफ़ाद के नशवोनुमाश्र की खातिर उनके मफ़ाद को पामाल करना किसी तरह इन्साफ़ के खिलाफ नहीं। मुर्गी का गला घोंट कर मार डालना ममनूह है, लेकिन अगर इन्सान को भूख लगी हो तो मुर्गी की ज़िन्दगी का ख्याल उसके ज़िबह करने में मान्हा नहीं हो सकता।" खिलाफ़त पाकिस्तान की शासन पद्धति के विषय में लिखा है–"चूंकि सिर्फ मुसलमान ही मुकम्मिल इंसान हैं इसलिये हमारे अमूरे हकूमत (राज्य सञ्चालन) में राय देने का हक सिर्फ़ मुसलमानों ही को हासिल होगा। हमारा दस्तूरे हकूमत इज्तमाहे-उम्मत (दलबन्दी) और अतायते अमीर (डिक्टेटरशिप) का इम्तजाज़ (मिश्रण) होगा जिसका नाम खिलाफ़त है।" यह है जिन्ना राज्य, जिसमें रहने से गांधी जी को कोई आपत्ति नहीं है।

इसी के लिये जिन्ना साहब ने दावा किया है कि पाकिस्तान सृष्टि के आरम्भ में था और अन्त तक कायम रहेगा'। मैं कहता हूँ कि यह भारत देश सृष्टि के आदि में हिन्दुस्तान था, यह कभी भी मुस्लिमस्थान नहीं बना, यह कभी पाकिस्तान न बनेगा। हिन्दुस्तान, हिन्दुस्तान ही रहेगा चाहे हम पर कितनी ही विपत्तियाँ आयें, परन्तु हमें विश्वास है कि अन्त में हमारी विजय होगी। प्रातः काल की ओस, बरसात की धूप, फूल की खुशबू, खुदगर्ज़ की दोस्ती और अत्याचारी का अत्याचार देर तक नहीं टिक सकता। ये पाकिस्तानी आन्दोलन भी चार दिन का तूफ़ान है। पाकिस्तान, फ़िरकापरस्ती की अन्तिम हिचकियाँ हैं। यह बुझते हुए दीपक की अन्तिम लौ है। इसके बाद अंधेरा ही अंधेरा है। विश्वास रखिये, यदि हिन्दू आज सङ्गठित हो जायें तो आप देखेंगे कि पंजाब और बंगाल पाकिस्तान बनने के स्थान पर मुस्लिम आकांक्षाओं के समाधिस्थल में परिणत हो जायेंगे।

अन्त में मैं आप से प्रार्थना करता हूँ कि आप लोग हिम्मत न हारें। इससे भी बुरे दिनों में हिन्दू जीवित रहे हैं और आगे भी रहेंगे। यदि अब भी समय रहते हिन्दू जाग जायें और अपने सब साधनों को जुटा लें तो किसी नवीन कुरुक्षेत्र के मैदान में संसार की शक्तियों को हराने की शक्ति अब भी हम में विद्यमान है। यदि हिन्दू यह समझ जायें कि प्रांतीयता, जातपांत, छूआछात आदि विचारों ने ही हमारी शक्ति को नष्ट किया है और हिन्दू युवक उस बिखरी हुई शक्ति को सङ्गठित करने के लिये बिरादरी के संकुचित क्षेत्र से निकल कर अन्तर्जातीय और अन्तर्प्रांतीय सम्बन्धों के लिये प्रयत्नशील हो जायें। यदि हिन्दू यह समझ लें कि सैनिक भावना की कमी से हमारे राष्ट्र का पतन हुआ है और

इसके उद्धारार्थ गली-गली, मुहल्ले-मुहल्ले में सैनिक-शाखायें खोल कर समूचे राष्ट्र को अजेय दुर्ग बना दें तथा यदि हिन्दू अपनी हीन भावना का परित्याग कर यह निश्चय कर लें कि यदि इहलोक क्षणिक है तो परलोक भी क्षणिक, यदि इहलोक एक पड़ाव है तो परलोक भी एक पड़ाव है। पुनर्जन्म होने से हमें बार-बार यहां ही आना पड़ेगा, इसलिये परलोक के साथ-साथ इहलोक का शासन भी हमें संभालना है, तो मैं आप को पूर्ण विश्वास दिलाता हूँ कि जिस प्रकार ग्रीक, शक, हूण और मुसलमानों के आक्रमण हमें नष्ट न कर सके, उसी प्रकार जब तक चांद और सूर्य चमकते हैं तब तक यह देश हिन्दुस्थान ही रहेगा। मेरी आप से यही अन्तिम विनय है कि जीवन की कष्टतम घड़ी में भी न भूलिये कि दुःख में ही सुख का आभास रहता है, अमावस की काली रात में ही पूर्णिमा की चांदनी छिपी रहती है। इसी प्रकार हमारी अवनति में ही उन्नति की रेखायें दीख रही हैं। हम स्वतंत्र होकर रहेंगे। हमारा देश सदा अखण्ड रहेगा और हिमालय के शिखर पर एक बार फिर से हिंदू पताका अवश्य लहरायेगी।

[यह व्याख्यान श्री पं० चन्द्रगुप्त जी वेदालंकार ने दीनानगर जिला गुरुदासपुर, पंजाब, में 'पाकिस्तान विरोधी सम्मेलन' के अध्यक्षपद से दिया था]

स्वराज्य की सीधी राह

प्रिय मित्रो ! मैं बंगाल में अपने जीवन में प्रथम बार ही आया हूँ। अत: इस प्रान्त की कठिनाईयों का मुझे विशेष ज्ञान नहीं, इसके लिये मैं आप सब भाइयों से क्षमा चाहता हूँ। मैं समझता हूँ कि यदि प्रान्तीय दुःखों को छोड़कर सार्वदेशिक दुःखों का वर्णन किया जाय तो यह अधिक लाभदायक होगा। इसलिये हिन्दू संगठन के विषय में दो-तीन बातों का वर्णन करूँगा। मेरा विश्वास है कि यदि बंगाली हिन्दू उन्हें मानेंगे तो उनका कल्याण होगा।

भाइयो ! यह निश्चय रक्खो कि भारतवर्ष के मुसलमान, हिन्दुओं के साथ मिलकर एक राष्ट्र बनाने को उद्यत नहीं हैं।

प्रतिक्षण जो कोई भी प्रयत्न कांग्रेस की ओर से हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के लिये हो रहा है और मुसलमानों को अधिकाधिक अधिकार देकर उन्हें प्रसन्न रखने के लिये जो समस्त प्रयत्न चल रहे हैं उन द्वारा वह खाई जो हिन्दू और मुसलमानों के बीच में शताब्दियों से विद्यमान है, निरन्तर चौड़ी हो रही है !

हिन्दू मुस्लिम एकता !

भाषा के प्रश्न को ही लीजिये—केवल दस वर्ष हुए, दस भी क्यों, पांच ही हुए कि बंगाल में एक ही भाषा प्रचलित थी। भाषा की दृष्टि से भारतवर्ष का अन्य कोई भी प्रान्त बंगाल के समान संगठित न था, परन्तु आज मुस्लिम-लीग की ओर इस संगठन को तोड़ने का प्रबल प्रयत्न हो रहा है ! उर्दू को राष्ट्रभाषा बनाने की भावना मुसलमानों में दृढ़ हो रही है। बंगाल में इतिहास की पाठ्य पुस्तकें आधी बंगाली और आधी उर्दू में लिखी जा रही हैं। हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य की यह अद्भुत मनोवृत्ति है। भाषाओं, धर्मों और जातियों को इकट्ठा कर देने से ही एकता स्थापित नहीं हो सकती। वास्तविक एकता तो हृदय से होती है। मैं एक प्रस्ताव आपके सामने रखता हूँ। प्रत्येक व्यक्ति अपने आपमें हिन्दू मुस्लिम एकता का अवतार बन जाय। वह अपने सिर के आधे भाग पर तुर्की टोपी रक्खे और आधा खाली, आधी ठोड़ी पर दाढ़ी रक्खे और आधी सफा चट, एक टांग में पाजामा पहने और दूसरी में धोती। ऐसा करने से वह हिन्दू-मुस्लिम एकता की सच्ची प्रतिमा बन जायेगा। यदि आप इस प्रस्ताव को सर्वसम्मति से पास कर मुस्लिम लीग के पास यह कह कर भेज दें कि हमने सच्ची एकता स्थापित करने के लिये यह निर्णय किया है, मैं कहता हूँ कि आप

देखेंगे कि मुसलमान इस प्रस्ताव को भी ठुकरा देंगे और इस बात के लिये लड़ेंगे कि पाजामा तो केवल एक टांग पर है, दूसरी पर तो अभी धोती ही है। वे आपको कहेंगे हम दोनों टांगों पर पाजामा चाहते हैं।

भारत के टुकड़े हो रहे हैं!

मुसलमान अपने में ही पृथक् राष्ट्र बनाने का निश्चय कर चुके हैं। मुस्लिम लीग जैसी उत्तरदायी संस्था के प्रधान श्रीयुत जिन्ना ने स्पष्ट घोषणा की है कि हिन्दुस्थान को मुस्लिम-भारत और हिन्दू-भारत में विभक्त कर दिया जाये। ऐसी दशा में मैं समझता हूँ कि मुसलमानों से मैत्री और समझौता करने का विचार ही नहीं उठ सकता। जिस मातृभूमि के लिये शताब्दियों से हम कष्ट उठा रहे हैं, जिसके लिये हमारे वीर हंसते-हंसते फांसी पर झूले, अण्डेमान में अपनी अस्थियों को गलाया और कारागार की काल-कोठरियों में अपनी आयु के बहुमूल्य वर्ष यातनाओं में बिता दिये, उस हमारी प्यारी भूमि को मुसलमान टुकड़ों में बांटना चाहते हैं। मैं कहता हूँ, जब तक भारत में एक भी हिन्दू जीता है वह इन टुकड़ों को सह नहीं सकता। यह निश्चय रखिये कि मुसलमान भाषा, धर्म और राजनीति की दृष्टि से अपने को हिन्दुओं से पृथक् कर रहे हैं। वे अपने में ही एक राष्ट्र बनाने की धुन में हैं। हिन्दुओं को आगामी सौ वर्ष तक समझना चाहिये कि इस देश में एक जाति न होकर दो जातियां बसती हैं। मैं चाहता हूँ मेरे कांग्रेसी मित्र भी इस सचाई को समझें परन्तु वे तो अन्धी आंखों पर दूरबीन लगा रहे हैं। दूसरों के न चाहते हुए भी वे उनसे मित्रता करने को दौड़ रहे हैं। परन्तु मित्रता तो दोनों ओर से होती

है। जब तक एक मित्रता न करना चाहे, दूसरा मित्रता करने में सफल नहीं हो सकता। कांग्रेस की नीति एकता स्थापित कर सकती है, परन्तु वह एकता एक घाट पर पानी पीते हुए सिंह और गाय की एकता के समान होगी। इस दशा में गाय की सिंह से एकता तभी हो सकती है जब कि सिंह उसे निगल ले। अतः स्पष्ट है कि कांग्रेस एकता स्थापित नहीं कर सकती। हिन्दू अपने त्याग और कष्टों द्वारा एक हाथ से जो ब्रिटिश सरकार से प्राप्त करते हैं वही दूसरे से मुसलमानों को देते जा रहे हैं। इसका परिणाम हिन्दुओं के लिये क्या होगा? हम हिन्दुओं को अपने ही देश में गुलाम बनकर रहना पड़ेगा।

मैं स्पष्ट कहता हूँ, क्या यह सत्य नहीं है कि बंगाल, सिन्ध, यू० पी० और सीमान्त प्रदेश में हिन्दुओं की दशा ब्रिटिश नौकरशाही के समय से भी बदतर है। मैं आप से सच २ पूछता हूँ क्या मुसलमान आज उससे अधिक संतुष्ट हैं जितना कि वे २५ वर्ष पहले थे। कांग्रेस ने शासन-सूत्र अपने हाथ में लेते ही मुसलमानों के प्रति मित्रता का व्यवहार प्रदर्शित किया, परन्तु यह सब कुछ किस के मूल्य पर? मुझे कहना पड़ता है कि हम हिन्दुओं के! इस नीति का परिणाम क्या हुआ? यदि मुसलमान आज किसी से घृणा करते हैं तो वह कांग्रेस है जिससे वे सब से अधिक घृणा करते हैं। कांग्रेस की नीति का यह स्वाभाविक परिणाम हुआ है।

समान व्यवहार का ढोंग!

हमारे कांग्रेसी मंत्रियों ने यह सिद्ध करने के लिये कि हमारे शासन में मुसलमानों को कोई कष्ट नहीं, विज्ञप्ति पर विज्ञप्ति प्रकाशित की हैं। बम्बई, मध्यप्रान्त, सिन्ध प्रान्त और बिहार के

प्रधान मंत्रियों ने यह सिद्ध करने का जी तोड़ यत्न किया है कि मुसलमानों की उन्नति करने के लिये हमने शक्ति-भर प्रयत्न किया है। और उन्होंने क्या किया है? यह मेरे हाथ में आंकड़े हैं जो इनकी मुस्लिम मनोवृत्ति को बताते हैं। बिहार सरकार कहती है कि यद्यपि हमारे प्रांत में मुसलमानों की संख्या १०% हैं तो भी हमने मुसलमानों को डिप्टी कलेक्टरों में २८% शिक्षा विभाग में ४८% और स्थानीय संस्थाओं में २५% अधिकार दिये हैं। यह सब कुछ कांग्रेस की नीति के समर्थन में किया है। कांग्रेसी मंत्री यह सिद्ध करने का प्रयत्न कर रहे हैं कि कांग्रेस सब से समान व्यवहार करती है, पर हिन्दुओं के साथ क्या किया? क्या मैं पूछ सकता हूँ कि यह कांग्रेसी मंत्री किनके वोट से चुने गये? यदि हिन्दुओं के वोट से, तो क्या यह उनका कर्त्तव्य नहीं कि उन्हें हिन्दुओं के साथ पूर्ण न्याय करना चाहिये, जिनके वोट से वे मंत्री बने हैं। मैं पूछता हूँ कि क्या यह राष्ट्रीयता है कि एक जाति को केवल इसलिये अधिक अधिकार दिये जायें, क्योंकि वह एक विशेष धर्म को मनाने वाली है और क्या तुम्हारा उनके प्रति कोई कर्त्तव्य नहीं जिनकी कृपा से तुम प्रधान मंत्री बने हो? एक अन्य प्रधान मंत्री (पं० पन्त) कहते हैं—"मैं प्रत्येक मुसलमान को खुला आह्वान करता हूँ कि वह बताये कि मेरे प्रांत में उसे क्या दुःख है?" प्रधान मंत्री साहब कहते हैं—"जहां कहीं धार्मिक प्रश्न पर झगड़ा हुआ मैंने सदा मुसलमानों का पक्ष लिया। मुहर्रम शांति-पूर्वक गुज़रने के लिये हिन्दुओं का बाजा बन्द कर दिया गया।" आगे चलकर पं० पन्त कहते हैं—"मुझे मुसलमानों ने कहा कि मुहर्रम होने से दस दिन तक हम शोक मानते हैं. अतः इन दिनों किसी प्रकार का गाना-बजाना नहीं होना चाहिये।" इस

पर प्रधान मंत्री ने क्या किया ? कांग्रेसी सरकार ने सचमुच आज्ञा जारी की कि मुहर्रम के दिनों में किसी प्रकार का बाजा न बजे। पं० पन्त कहते हैं—"कई स्थानों पर शंख बजाना भी बन्द कर दिया गया।" सोचिये, ब्रिटिश नौकरशाही के समय में भी हिन्दुओं पर ऐसी रुकावटें न थीं। ये हैं राष्ट्रीय संस्था के कारनामे जो हिन्दू-महासभा को साम्प्रदायिक कहने का साहस करती है। सुनिये, कई स्थानों पर मंदिरों के घंटों पर भी पाबन्दी लगाई गई। यह सब कुछ कांगरेस को राष्ट्रीय सिद्ध करने के लिये किया गया। पं० पन्त अन्त में कहते हैं—"उन दिनों बिना आज्ञा हिंदुओं का कोई जलूस नहीं निकलने दिया गया।' मैं आप से कहता हूँ, क्या यह न्याय है ? क्या यह उस संस्था की राष्ट्रीयता है जो अपने को भारत की सब से बड़ी राष्ट्रीय संस्था कहने का दम भरती है ? मैं समझता हूँ अब हिन्दू सभा तक इस नीति को सहन नहीं कर सकती। हमें इसके विरुद्ध विद्रोह करना पड़ेगा। मैं जानता हूँ कि हमारे काँग्रेसी मित्र ईमानदार हैं, उनका उद्देश्य भी अच्छा है, परन्तु उनकी नीति दिन-प्रतिदिन पतित हो रही है। कांग्रेस की नीति केवल हिंदू-विरोधी ही नहीं है बल्कि वह सम्प्रदायिक और अराष्ट्रीय भी है, परन्तु अब समय आ गया है जब कांग्रेस को यह नीति छोड़नी पड़ेगी। जितनी जल्दी वे इस नीति को छोड़ेंगे उतनी ही जल्दी उनका एकता का पागलपन भाग जायगा। और यदि यह नीति जारी रही तो मैं कहता हूँ कि मुसलमान दिन-प्रतिदिन आगे बढ़ते जायेंगे, जिसका परिणाम हिन्दुओं के लिये भयानक होगा। हिन्दुओं को अपने ही देश में दास बनकर रहना पड़ेगा। इसमें मुसलमानों का कोई दोष नहीं। इस संसार में वही लोग एक ऐसे हैं जो अपनी मांगें रखते हैं और पूर्ण हो जाती हैं।

वे जानते हैं कि हिन्दुओं को किस प्रकार ठगा जा सकता है। मैं समझता हूँ, उनकी नीति सफल रही है। वे अपने लिये जितना अधिक प्राप्त कर सकते हैं, करते हैं। परन्तु केवल हिन्दू ही संसार में ऐसे हैं जो मनुष्यमात्र की सोचते हैं, उनसे उदारता और भलाई करते हैं, किन्तु अपने से अन्याय करते चले जाते हैं। हिन्दू राजाओं ने अपनी सहिष्णुता का परिचय देने के लिये अपने धन से मस्जिदें बनवाईं। मैं समझता हूँ उदारता की दृष्टि से ठीक है, परन्तु जहाँ तक मंदिर और मस्जिद का प्रश्न है यह एक ग़लत नीति है। यदि हिन्दुओं को जीना है तो उन्हें यह नीति छोड़नी पड़ेगी। आज हमें अपने सिवाय किसी दूसरे की चिन्ता नहीं होनी चाहिये। जब संसार हमारे प्रति न्याय करेगा तो हम भी उनके प्रति न्याय करेंगे। किन्तु जब सब हमें लूटने में लगे हैं, अपने को लुटाना पाप है। वह हिन्दू जो नाग पंचमी के दिन विष-धरों को दूध पिलाता है उसे कोई भी अन्यायी नहीं कह सकता। हिन्दुओ! मैं तुम से कहता हूँ कि तुम्हें अपने को जीवित रखने के लिये अब अन्यायी भी बनना पड़ेगा।

हिन्दू-संगठन की आवश्यकता

मैं आप से कहता हूँ कि आपको अपनी रक्षा लिये बंगाल में एक दृढ़ हिन्दू संस्था कायम करनी होगी। बंगाली हिन्दुओं के बढ़ते हुए दुखों को दूर करने का यही एकमात्र उपाय है। यद्यपि यह अत्यन्त सादा है, परन्तु अत्यन्त प्रभावपूर्ण है। प्यारे हिन्दू मित्रो! मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आज से आगे आप लोगों को हिंदू राजनीति और हिंदूसभा का संगठन करना होगा जो कि आप के हितों की रक्षा करने के लिये बाध्य होगी। आप पूछेंगे कि

वह हिन्दुसभा आप का क्या करेगी ? देखिये, मातृभूमि के सैंकड़ों वीरों के बलिदान से आज हमें कुछ २ प्रांतीय स्वाधीनता मिली है। यद्यपि यह अपूर्ण है तो भी इससे हमारा कुछ प्रयोजन तो सिद्ध हो ही सकता है। यदि हिंदू यह निश्चय करलें कि आगे से नगरसभा और राजसभा में उन्हीं लोगों को भेजा जायगा जो हिंदू हितों की रक्षा करने की प्रतिज्ञा करेंगे और उसके लिये लड़ेंगे, तो आप देखेंगे कि अगले तीन ही वर्ष के भीतर भारतवर्ष में सात प्रांत ऐसे होंगे जिनमें विशुद्ध हिन्दू मन्त्रिमंडल स्थापित होंगे। यू० पी० के ही मामले को लीजिये। यदि पं० पन्त के स्थान पर कोई हिन्दूसभावादी चुना जाता जो खुले आम अपने को हिंदू कहता और हिन्दू हितों की वकालत करता तो इस प्रांत की दशा क्या होती ? ज्योंही कोई मुस्लिमलीगी उसे हिंदूपरस्त कह कर बदनाम करता वह तुरन्त मुसलमानों से पूछ उठता मेरे प्रांत में तुम्हारी जनसंख्या क्या है ? यदि उत्तर १५% होता तो वह कहता, क्या तुम्हें नौकरियों में १५% अधिकार मिले हैं ? यदि हां तो देखो मैं राष्ट्रीय मन्त्री हूँ। तुम्हें तुम्हारी संख्या के अनुसार अधिकार दे दिये गये हैं। मैं हिन्दू मतों से चुना गया हूँ, मेरा यह दसगुणा कर्तव्य है कि मैं हिन्दू हितों की रक्षा करूँ। अत: मैं उनके अधिकार काट कर तुम्हें नहीं दे सकता। यदि ऐसे योग्य और साहसी व्यक्ति हिन्दुओं द्वारा चुने जाते तो आज हिन्दू देवियों को मुस्लिम गुण्डों द्वारा भीषण यातनाओं का सामना न करना पड़ता। इस दशा में यदि यू० पी० में कोई हिन्दू लड़की भगाई जाती तो उस गुण्डे को इतना कठोर दण्ड दिया जाता कि वह हिन्दू लड़की को छूने में भी उतना ही डरता जितना यूरोपियन लड़की को। क्या कारण है कि मुसलमान यूरोपियन लड़कियों

को नहीं भगाते ? सीमांत में हिन्दुओं के घर लूटे जाते हैं, हिन्दू लड़कियां भगाई जाती हैं, बच्चे थैले में डाल कर उड़ाये जाते हैं। ये दारुण कहानियां आप प्रतिदिन पढ़ते हैं। आप को मालूम है कि पठानों ने ऐलिस नाम की अंग्रेज़ लड़की को उड़ाया था, उस का क्या परिणाम हुआ ? सारा का सारा गांव धूल में मिला दिया गया। उस दिन से कोई पठान अंगरेज़ लड़की को छूने का साहस भी नहीं करता। यदि हिन्दू लड़कियों के विषय में भी ऐसा ही किया जाता तो सीमांत की यह लूट बन्द हो जाती।

दोष किस का ?

परन्तु क्या वर्त्तमान मंत्रियों में यह साहस है? नहीं, वे तो इस नीति का विरोध करते हैं। वे तो हिन्दू मतों से चुने गए होने पर भी मुस्लिम हितों की रक्षा के लिये वचन-बद्ध हैं। वे आदमी बुरे नहीं, परन्तु उनकी नीति बुरी है। वे देश-भक्त हैं, परन्तु उनकी देश-भक्ति भी एक प्रकार का पागलपन है। दोष किस का है ? दोष हमारा है कि हम ने ऐसे व्यक्ति चुने। हमारी सारी नीति ही ग़लत है।

मुस्लिम नीति

मुसलमानों को देखिये, उनकी क्या नीति है ? उन्होंने उसी को चुनकर भेजा जो उनमें कट्टर मुसलमान था। यही कारण है कि बङ्गाल और पञ्जाब, इन दो प्रांतों में ऐसे मंत्रीमण्डल बने जो स्पष्टत: अपने को मुस्लिम लीगी कहते हैं। बंगाल के प्रधान मंत्री श्रीयुत फज़लुल्हक अपने को खुले आम मुस्लिम लीगी कहते हैं। वे मुस्लिमपने से भरी हुई वक्तृतायें देते हैं ! अपने शासन को साफ़ शब्दों में 'मुस्लिम राज्य' कहते हैं, और अपनी जाति के लिये

जितना कर सकते हैं, करते हैं। उन्होंने अपने प्रांत में ६०%
नौकरियां मुसलमानों के लिये सुरक्षित रक्खी हैं। अब वे कलकत्ता
कारपोरेशन को अपने ढंग से सुधारने का प्रयत्न कर रहे हैं।
इस व्यक्ति के साहस को देखिये। परन्तु मुस्लिम दृष्टिकोण से
यह प्रशंसनीय हैं। अब पंजाब के प्रधान मंत्री सर सिकन्दर
हयातखां को लीजिये! इनके साहस को देखिये। ये मुसलमानों
के लिये सब कुछ कर रहे हैं। क्यों? क्योंकि वे इसी शर्त पर
चुने गए हैं कि मुस्लिम हितों की रक्षा करेंगे। दूसरी ओर हिन्दू
टिक्ट से चुने गये मन्त्रियों की दशा देखिये। मुस्लिम मन्त्री,
मुस्लिम लीग के सदस्य हो सकते हैं, परन्तु हिन्दू मंत्री हिन्दू-
सभा के सदस्य नहीं हो सकते। हिन्दू वोट से चुने गए कांग्रेसी
मंत्री हिन्दू-सभा के सदस्यों को कहते हैं—तुम कांग्रेस से धकेल
कर बाहर कर दिये जाओगे। मानो राष्ट्रीयता का अभिप्राय यह
हो कि हम हिन्दू होना ही छोड़ दें। मानो राष्ट्रीय संस्था से हिन्दुओं
का कुछ सम्बन्ध ही नहीं। क्या यह सत्य नहीं कि हिन्दू-सभा
का कोई सदस्य कांग्रेस का सदस्य नहीं हो सकता? यदि आज
मैं कांग्रेस में जाऊँ तो मेरे जाते ही मुझ से पूछेंगे 'क्या तुमने
हिन्दू-सभा के प्रधानत्व से त्याग पत्र दे दिया है? मैं साफ़ कहूँगा
"मैं राष्ट्रीय हूँ, कांग्रेस के चार आना टिकट पर नहीं, अपितु
अपने हृदय के टिकट पर। जब तक मेरे देह में रक्त की एक
भी बूंद शेष है मैं अपने को हिन्दू कहता रहूँगा और हिन्दुत्व
के लिये लड़ता रहूँगा। हिन्दुओ! निश्चय करो कि जब आगामी
चुनाव आये और कोई प्रतिनिधि आप से वोट माँगे तो आपने
साफ़ २ पूछना 'क्या तुम हिन्दू हो?' यदि वह कहे 'नहीं, मैं
तो राष्ट्रीय हूँ' तो आपने कहना जाओ, जहां राष्ट्रीय वोट

मिलता हो या तब तक प्रतीक्षा करो तब तक राष्ट्रीय वोट नहीं आते, यहां तो हिन्दू वोट हैं। जब चुनाव पद्धति ही सारी साम्प्रदायिक है और उससे चुने जाने में शर्म नहीं, तो फिर हिन्दू कहलाने में क्या शर्म धरी है ? जब कोई व्यक्ति आकर आपको राष्ट्रीयता का उपदेश दे और आपको राष्ट्रीय बनने की प्रेरणा करे तो आप उसे कहिये 'चुनाव के दिन तो आप सब हिन्दू होते हैं, किन्तु ज्यों ही चुनाव समाप्त हुआ, आप अपने को राष्ट्रीय कहने लगते हैं। यह धोखा है। यह धोखा ही नहीं हिन्दुओं से विश्वासघात भी है। चुनाव के दिन आप बड़े गर्व से अपने को हिन्दू लिखाते हैं, हिन्दू कहते हैं और हिन्दुओं से वोट मांगते हैं। परन्तु चुने जाते ही अपने वोटरों को ठुकरा कर अपने को राष्ट्रीय कहने लगते हैं। यह धोखा और विश्वासघात महा पाप है !

हिन्दू नीति

इसलिये मैं आप से कहता हूँ कि अब से आगे आपकी राजनीति हिन्दू-राजनीति होनी चाहिये। राष्ट्र-नीति हिन्दू-राजनीति के बिना चल ही नहीं सकती ! इसलिये प्रत्येक हिन्दू को उन लोगों को वोट देना चाहिये जो स्पष्टतः हिन्दू-हितों की रक्षा के लिये वचनबद्ध हों। इसका परिणाम क्या होगा ? ऐसे चुने हुए लोग हिन्दू-हितरक्षक मामले का ही पक्ष ग्रहण करेंगे। आज बंगाल में मुसलमानों के लिये ६०% नौकरियां सुरक्षित की गई हैं, परन्तु यदि आपके सब प्रतिनिधि हिन्दू-सभावादी होते तो यह नियम कभी भी पास न हो सकता। वे इसका घोर विरोध करते। वे कांग्रेसी सदस्यों की भाँति उदासीनता की मनोवृत्ति प्रदर्शित न करते। कांग्रेस ने 'साम्प्रदायिक निर्णय' (Communal Award)

के लिये क्या किया? ऐसे महत्त्वपूर्ण विषय पर कांग्रेस जैसी राष्ट्रीय कही जाने वाली संस्था ने, जो हिन्दू-सभा को साम्प्रदायिक कहती है 'न स्वीकार करो और न इन्कार करो, की नीति ग्रहण की और आज वही कांग्रेस कहती है 'जातिगत निर्णय (Communal Award) तो स्थापित हो चुका है।' देखिये हिन्दू-सभा ने क्या किया? हमने इस जातिगत निर्णय को स्वीकार नहीं किया। हम आज भी 'राष्ट्रीय निर्णय' की मांग कर रहे हैं। इस लिये मैं कहता हूँ कि आज से बंगाल में हिन्दुओं की एक ऐसी सुदृढ़ संस्था होनी चाहिये जो तब तक कांग्रेस की नीति पर चलने को बाध्य न होगी जब तक कांग्रेस अपनी नीति में परिवर्तन नहीं कर लेती। यदि कांग्रेस अपनी नीति में परिवर्तन करेगी तो हम मिलकर काम करने को तैयार हैं। किन्तु जब तक उसकी यही नीति जारी है, हमें हिन्दू-हित-रक्षक एक पृथक् संस्था बना कर काम करना होगा, जो बंगाल में हिन्दुओं की हर कदम पर रक्षा करेगी। मैं पूछता हूँ कि हिन्दू टिकट से खड़ा होने में किस बात की लज्जा है? यदि हमारे उच्च-कोटि के विद्वान् और साहसी युवक हिन्दू टिकट से हिन्दुओं के प्रतिनिधि होकर जायें तो इससे देश का बहुत भला होगा। अब से हमें अपनी यह नीति ही बना लेनी चाहिये कि हम हिन्दू-विरोधी को वोट न देंगे। कल्पना कीजिये, यदि डाक्टर मुंजे के समान कट्टर हिन्दू किसी प्रान्त का प्रधान मंत्री बन जाये तो क्या होगा? समझिये, मैं ही यदि किसी प्रान्त का प्रधान मंत्री बनाया जाता हूँ (यद्यपि मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं कभी भी व्यवस्थापिका सभा का सदस्य तक भी बनने को खड़ा न होऊँगा) तो क्या करूँगा? ज्यों ही मुझे समाचार मिलेगा कि यू० पी० में मुहर्रम के कारण बाजा बन्द

कर दिया गया है और विवाह पार्टी भी बाजे के साथ गुजरनी बन्द कर दी गई हैं, तो मैं तुरन्त मध्यप्रान्त में हिंदुओं को आज्ञा दूँगा कि मस्जिदों में दी जाती हुई अजाँ को सुनना बन्द कर दें, क्योंकि इससे १२ मील दूर स्थित मंदिर की पूजा में खलल पड़ता है। इसका यही हल है। मैं कहता हूँ कि यदि आप ऐसा साहस करके एक बार कह ही दें तो मुसलमान आपके पास आवेंगे और समझौते की कोशिश करेंगे। मैं पूछता हूँ कि यदि मस्जिद के सम्मुख बाजा बजाने पर उन्हें आक्षेप है तो मस्जिदें सार्वजनिक सड़कों पर बनने ही क्यों दी जाती हैं? क्यों नहीं मुसलमान हिंदू साधुओं की भाँति जंगलों में जा कर ध्यान लगाते? ऐसा साहस पैदा करने का केवल एक ही तरीका है कि आप हिंदू को वोट दें और हिंदू को ही चुनें। इस प्रकार सात प्रान्तों में शुद्ध हिंदू मंत्रिमंडलस्थापित होंगे। वे सब हिंदुसभा के सदस्य होंगे। इससे प्रजा में हिंदुसभा का मान ऊँचा हो जायेगा। तब अपने को राष्ट्रीय कहने वाले हिंदू आपके पास आकर कहेंगे, हम भी तो हिंदू हैं, यह देखो हमारी चोटी, यह हमारा यज्ञोपवीत, इतनी हमने शुद्धि की और इतना हम प्रतिदिन गायत्री का पाठ करते हैं। तब वे अपनी गांधी टोपी उतारेंगे और तिरङ्गा फेंक कर भगवा झण्डा उठायेंगे, परन्तु यह सब केवल आपके वोट पर ही आश्रित है।

एकता की प्रार्थना!

अन्त में मैं आपसे कहता हूँ कि आप शूद्र, नमः शूद्र, सनातनी, समाजी, सिक्ख, बौद्ध सभी आपस के भेदभाव भुला कर, छूआछूत मिटा कर तीस करोड़ के तीस करोड़ एक व्यक्ति की

भान्ति खड़े हो जायें। हम सब एक हैं। हमारी भाषा एक है। हमारी संस्कृति एक है। हमारा इतिहास एक है। सबसे बढ़ कर हमारा नाम एक है। यह देश हमारा है, मुसलमान का नहीं अंगरेज़ का नहीं, किसी और का नहीं। मैंने आपको स्पष्ट और सीधा मार्ग बताया है यदि आप इस पर विचार करेंगे और इसे क्रियान्वित करेंगे तो मैं कहता हूँ कि एक बार हम सब इकट्ठे होकर अपनी मातृभूमि को विधर्मियों और विदेशियों के पंजे से छुड़ा सकेंगे।

[यह व्याख्यान हिन्दू-राष्ट्रपति वीर सावरकर ने बंगाल प्रांतीय हिन्दू-सम्मेलन के अध्यक्ष पद से खुलना में दिया था]

अन्तर्ज्वाला

बन्धुओ ! आज मेरे आगमन पर आप लोगों ने मेरा जो भव्य स्वागत किया है उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। यहाँ जो नवयुवक बैठे हैं वे इस स्वागत को देखकर यह सोचते होंगे कि समाजसेवा से स्वागत मिलता है। अतः सार्वजनिक सेवा मान के लिये करनी चाहिए, परन्तु यथार्थता ऐसी नहीं है। समाज-सेवा मनुष्य, सेवा के मार्ग में पग धरते ही यह समझ लेता है कि मेरा मार्ग कंटकाकीर्ण है। इसी लिये हज़रत ईसा सूली की ओर देखते थे, सम्मान की ओर नहीं। ऋषि दयानन्द

वषभरे प्याले को निहारते थे, मान को नहीं। कारागार से मुक्त होने के पश्चात् प्रतिष्ठा का भाव कभी स्वप्न में भी वीर सावरकर के मन में नहीं आया। इसी लिये आज देश-देशान्तरों के सहस्रों लोग इनकी चरणवन्दना कर रहे हैं। आप मेरे त्याग की बात कहते हैं, परन्तु मैं तो अपने को बलिदानों के नगर की देहली पर खड़ा हुआ पाता हूँ। मुझे तो सभी ओर अमरात्मायें और हुतात्मायें दृष्टिगोचर हो रही हैं। वह देखिये महाराज युधिष्ठिर की राजधानी इन्द्रप्रस्थ के खण्डहर अपनी गौरवगाथा सुना रहे हैं। इधर देखिये, महरौली के ध्वंसावशेषों से महाराजा पृथ्वीराज की वीर कथा सुनाई पड़ रही है। यह जो चाँदनी चौक में फुव्वारा शान्त पड़ा है, यह कभी मुगलों का फांसीघर था और तब यह लहू की बौछार किया करता था। यहीं पर बन्दा बैरागी और उसके सात सौ साथियों का प्राणांत किया गया था। प्रतिदिन सौ-सौ सिक्खों के सिर उतारे जाते थे। आठवें दिन बन्दा की बारी आई। वह और उसका नन्हा बच्चा लोहे के पिंजरे में बन्द थे। बच्चे को मार कर उसके लोथड़े बन्दा के मुँह पर फैंके गये। ज़ंजीरों में जकड़ा हुआ बन्दा यह भी सह गया। गरम गरम, लाल-लाल लोहे की सीखें बन्दा की देह पर लगाई जाने लगीं। मांस जल-जल कर नीचे गिरने लगा। हड्डियां दिखाई देने लगीं। हड्डियों का पिंजर हाथी के पैर तले कुचलवा दिया गया। मांस नुचते समय जब बन्दा का लहू नीचे गिरता था तो वह उसे हाथों पर लेकर मुँह पर मलता था। जल्लाद के पूछने पर बन्दा ने उत्तर दिया—"धर्म पर मरने वाले का चेहरा पीला नहीं, इस तरह लाल हुआ करता है।" यह देखिये, घण्टाघर सिर उठाये खड़ा है। यहीं पर संगीन छाती में घुस जाने

पर हुतात्मा श्रद्धानन्द ने गरज कर कहा था—"हिम्मत हो तो राइफ़ल चला दे, सन्यासी का सीना खुला है!" इसी नगर की सड़कों पर भाई मतिराम को आरे से चीरा गया। यहीं पर गुरु तेग़ बहादुर का वध हुआ। यहीं की गलियों में १८५७ के स्वातन्त्र्य-युद्ध के वीर स्वतन्त्रता की पुकार मचाते हुए मर मिटे। न जाने कितने हज़ार धर्मवीरों के सिर इस नगर की नींव में पड़े हुए हैं। उन वीरात्माओं की पंक्ति में खड़ा होने का साहस भी मैं नहीं कर सकता हूँ।

मेरे कारागार से मुक्त होने के कारण आज आप लोग प्रसन्न हैं, परन्तु मैं तो अब भी अपने को कारागार में खड़ा हुआ पाता हूँ। वह मेरठ का बन्दीगृह था, जहां एक हज़ार कैदी रहते थे और यह भारत का केन्द्रीय बन्दीगृह है, जहां चालीस करोड़ मनुष्य पशुओं से भी बुरा जीवन बिताते हैं। बन्दीगृह के बन्दी को दोनों समय भर-पेट भोजन तो मिल जाता है, परन्तु यहां करोड़ों लोगों के पेटों पर अन्न की नाकाबन्दी हो रही है। कारागार के आजन्म कैद से लौटने की आशा तो रहती है, परन्तु इस जेलखाने के कैदी जन्म से ही पराधीनता की शृङ्खलाओं में जकड़े हुए पैदा होते हैं और वे शृङ्खलाएँ मरने पर चिता के साथ जलकर भस्म होती हैं। सम्भव है यहां कुछ ऐसे सज्जन भी आये हों जिन्हें यह जान कर प्रसन्नता हुई हो कि आखिर हाईकोर्ट से भी सज़ा बहाल ही रही अतः पन्त मंत्रिमण्डल ने निश्चय ही मुझ से न्याय किया था। ऐसे भाई से मैं कहना चाहता हूँ कि यदि यही कसौटी है तो ईसा को सूली पर चढ़ाना भी न्याय था; सुकरात को विष खिलाना भी ठीक था और लोकमान्य तिलक का निर्वासन भी उचित था। यदि इन सबके विषय में आपकी धारणा

दूसरी ही है तो मैं भी उसी का अधिकारी हूँ। मुझे इस विषय में अधिक कुछ नहीं कहना। मैं उन्हीं शब्दों को दोहराता हूँ जिन्हें मुझसे पूर्व भगवान् तिलक कह चुके हैं—

यद्यपि इस जूरी ने मुझ को अपराधी ठहराया है,
तो भी मेरे मन ने मुझको निर्दोषी बतलाया है।
ईश्वर का संकेत मनोगत दिखलाई ये मुझे पड़े,
मेरे संकट सहने से ही हिन्दू राष्ट्र का दुःख टले।

इस प्रारम्भिक निवेदन के पश्चात् मैं आज आप लोगों को हिन्दु सभा के विषय में कुछ जानकारी कराना चाहता हूँ। धन और प्रचार-साधनों की अत्यल्पता के कारण जन-साधारण तक हमारा संदेश पहुँचना कठिन हो रहा है। जो कुछ धीमी-सी आवाज़ जनता तक पहुँचती भी है वह इतनी विकृत होकर जाती है कि उसे सुन कर लोग इससे घृणा करने लगते हैं। इसमें हमारा कोई अपराध नहीं है क्योंकि हमारे देश के सभी पत्र और समाचार एजेंसियां कांग्रेस के प्रभाव में हैं और वे हिन्दु-सभा को कुचलना ही स्वराज्य का मूलमन्त्र समझे बैठी हैं। हिन्दुओं के महत्वपूर्ण समचारों को छिपाना तथा कांग्रेस के अनावश्यक समाचारों को भी विशेष स्थान देना इस देश में सम्पादन-कला की उत्कृष्टता का प्रमाणपत्र है। धन के बल पर अपनी प्रतिस्पर्धी संस्था को हर सम्भव उपाय से नीचा दिखाना ही इस अभागे देश में सच्ची देशभक्ति मानी जाती है। ऐसी दशा में जो बातें मैं आज आप से कहने लगा हूँ यदि वे नवीन प्रतीत हों तो उन पर आश्चर्य करने की कोई बात नहीं है।

हिन्दू-सभा के दृष्टिकोण को ठीक-ठीक समझाने के लिये मैं आप को दो शताब्दि पीछे के इतिहास पर ले जाना चाहता

हू जबकि ईस्ट इंडिया कम्पनी भारत में अपना प्रभुत्व जमा रही थी। ईस्ट इंडिया कम्पनी के आगमन के समय भारत का नकशा इस प्रकार था—ऊपर नैपाल में गुरखा हिन्दू राज्य करते थे। नीचे पंजाब में सिक्ख हिन्दुओं का शासन था। राजपुताने में राजपूत हिन्दू शासक थे और देहली से तंजावर्त्त (तंजौर) तक तथा द्वारिका से जगन्नाथपुरी तक का सम्पूर्ण प्रदेश मराठा हिन्दुओं के आधीन था। कोल्हापुर, धार, देवास, औंध, बड़ौदा, नागपुर, इन्दौर, पूना, गवालियर, और झाँसी को अपनी राजधानियां बना कर अनेकों मराठा सरदार शासन कर रहे थे। इस प्रकार अंग्रेज़ी राज्य की नींव जमने से पहले ही हिन्दुओं ने एक 'हिन्दू' नाम से एक 'हिन्दू भावना' से प्रेरित होकर और एक 'हिन्दू' ध्वजा के नीचे इकट्ठे हो कर 'हिन्दू-पाद-पादशाही' स्थापित कर ली थी। सैंकड़ों युद्धों में मुसलमान हिन्दुओं से बुरी तरह परास्त हुए थे। मुसलिम चाँद, हिन्दू सूर्य के सम्मुख हार मान कर बैठ गया था। समस्त भारत एक बार फिर से हिन्दुओं के आधीन हो गया था और लगभग आधी शताब्दि तक मराठा लोग हिन्दुस्तान के शासक बने रहे। उस समय निज़ाम, नवाब, सरदार और आलमगीर विद्यमान थे, परन्तु अब उनके नाम का जादू मिट चुका था। बङ्गाल का नवाब अलीवर्दीखां मराठों को १२ लाख रुपया चौथ देता था। टीपू सुलतान और हैदरअली, मराठा सेनाओं से परास्त होकर नियमित रूप में कर दे रहे थे। हैदराबाद के निज़ाम ने तो अपनी शाही मुहर ही भाऊजी के हाथ में दे दी थी कि जो शर्तें चाहो लिख दो, मैं उन्हें मानने को तय्यार हूँ। दिल्ली का मुग़ल सम्राट् सिंधिया का कैदी बना हुआ था और उस से दिये जाते हुए ६५ हज़ार रुपये वार्षिक की पैंशन

पर गुज़ारा करता था । दिल्ली पूना का एक उपनगर (सबब) मात्र रह गया था। भारत ही नहीं, अपितु समस्त एशिया की राजनीति का केन्द्र उस समय पूना बना हुआ था। पेशवा के दरबार में ईरानी, अफ़गानी, फ्रैंच, पोरचुगीज़, डच और अंग्रेज़ दूत रहते थे। पानीपत की विजय हार बन चुकी थी। अहमद-शाह दुर्रानी ने हिन्दुस्थान की राजनीति में भाग न लेने की घोषणा कर दी थी। अवस्था यहां तक बदली थी कि कहां तो हिन्दुस्थान के लोग अपने झगड़ों के निपटारे के लिये बाहरी शक्तियों को आमन्त्रित करते थे कहां १० मई १७५८ के दिन ईरान के शाह ने कन्धार पर आक्रमण करने के लिये रघुनाथ जी भौंसले को निमन्त्रण भेजा था। इस दशा में जब अंग्रेज़ों ने साम्राज्य का विस्तार आरंभ किया तो उनकी खूनी लड़ाईयां हिन्दुओं के साथ ही हुईं। गुरखों, सिक्खों, राजपूतों, जाटों और मराठों के भग्नावशेषों पर ही अंग्रेज़ी राज्य खड़ा हुआ। स्वयं अंग्रेज़ भी इस बात को समझते थे कि देशकी वास्तविक शक्ति मुसलमान न होकर हिन्दू ही हैं। इसका पता उन्हें १७५७ के प्लासी के संग्राम में ही लग गया था। लार्ड क्लाईव जब सो रहा था तो लड़ाई आरम्भ हुई और जब वह जागा तो उसने अपने को विजयी पाया। हिन्दू राजाओं को कुचलने के बाद मुसलिम नवाबों को आधीन करने में अंग्रेज़ों को कोई विशेष कठिनाई नहीं हुई। इस बात को जान कर कि हमने राज्य हिन्दुओं से छीना है, अंग्रेज़ों ने यह निश्चय किया कि हिन्दुओं में से हिन्दू भाव नष्ट कर दिया जाये और इनके संगठन को इतना खोखला बना दिया जाये कि यदि कभी हिन्दुओं में यह विचार उत्पन्न भी हो कि राज्य हमसे गया है, तो शक्तिहीन होने से वे

कुछ कर न सकें। इस दशा में प्रथम प्रयास ईसाई पादरियों द्वारा हिन्दुओं का धर्मपरिवर्तन था। परन्तु १८५७ के विद्रोह ने अङ्गरेजों के इस स्वप्न को तोड़ दिया और महारानी विक्टोरिया को घोषणा करनी पड़ी कि हम किसी के धर्म में हस्तक्षेप न करेंगे। १८५७ के विद्रोह के बाद शस्त्र छिन जाने पर भी हिन्दुओं ने हिन्दू राज्य स्थापित करने के लिये सामूहिक और वैयक्तिक प्रयत्न जारी रक्खे। वासुदेव बलवन्त फड़के से लेकर सरदार भगतसिंह तक के सभी क्रांतिकारी इसी भावना से भरे हुए थे। १८५७ के विद्रोह की पराजय के बाद ही वासुदेव बलवन्त फड़के ने महाराष्ट्र में और रामसिंह ने पञ्जाब में हिन्दू राज्य स्थापित करने का यत्न किया। मदनलाल ढींगरा, वीर सावरकर, भाई परमानन्द, देशभक्त हरदयाल और सरदार भगतसिंह—सभी का एक ही उद्देश्य था। ढींगरा ने फाँसी पर चढ़ते समय घोषणा की थी—"एक हिंदू के नाते मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि मैं फिर से हिंदुस्थान में पैदा होऊं और अपनी मां को बन्धनमुक्त करने के लिये बार-बार जन्म धारण करता रहूँ। मैंने गीता के संदेश से प्रेरित हो कर ही ऐसा किया है।" फांसी पर लटकने से पूर्व भगतसिंह ने गाया था—"मां मेरा रङ्ग दे बसन्ती चोला, जिस रङ्ग में रङ्ग के शिवा ने मां का बन्धन खोला।"

प्रथम प्रयास में विफल होकर अङ्गरेजों ने दूसरी चाल चली। इस नवीन नीति के सूत्रधार लार्ड मैकाले थे। इनका कहना था कि यदि हिंदुओं में पश्चिमीय ढंग की शिक्षा प्रचलित कर दी जाये तो वे आप से आप हिंदू धर्म से घृणा करने लगेंगे। मैकाले ने अपने दामाद को लिखे एक पत्र में लिखा है कि हिन्दू युवकों

में पश्चिमीय शिक्षा का प्रवेश होने पर वे स्वतः ही हिंदू होने में लजायेंगे और अंगरेज़ीपने से प्रेम करेंगे। मैकाले की भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई। इस नवीन शिक्षा में दीक्षित हुए लोग हिंदू नाम से घृणा करने लगे, मानो हिंदू चोर-पिता का पुत्र हो। उन्हें हिन्दू धर्म और हिंदू संस्कृति, अंग्रेज़ी सभ्यता के सम्मुख हेय प्रतीत होने लगी। इतना ही नहीं, वे यहां तक बढ़े कि अङ्गरेज़ी राज्य को 'दैवीय देन' समझने लगे और उसे स्थिर रखने की प्रार्थनायें करने लगे। हिंदुओं के इस पतन को देखकर अङ्गरेज़ प्रसन्न हुए, परन्तु मुसलमान इस प्रवाह में नहीं बहे। परिणामतः हिंदू की शक्ति खण्डित हो गई और मुसलमान संगठित रहे। हिंदू की यह निर्बलता ही अङ्गरेजी राज्य की दृढ़ता का कारण हुई।

यद्यपि इस नवीन शिक्षा के प्रवेश से हिंदुओं की नवीन संतति में से हिंदुत्व की भावना नष्ट हो रही थी, तथापि समय-समय पर कहीं-कहीं हिंदू ज्योति चमक उठती थी और एकाध हिंदू अपने खोये साम्राज्य को फिर से लेने का यत्न करता था। उस समय जो कोई खुले रूप में अपने को हिंदू घोषित करता था, सरकार उसे संदेह की दृष्टि से देखती थी। इस नामावशेष हिंदू-भावना को नष्ट करने के लिये सन् १८८६ में 'कांग्रेस' नाम से एक नवीन संस्था की स्थापना की गई। याद रखिये, वासुदेव बलवन्त फड़के के आंदोलन को कुचलने के ठीक बाद ही कांग्रेस की उत्पत्ति हुई। आरम्भ में ब्रिटिश सरकार ने इसे पाला-पोसा और यह ध्यान देने योग्य बात है कि इसके प्रवर्त्तकों में से एक भारत के वायसराय लार्ड डफरिन भी थे। बहुत समय तक यह संस्था ह्यूम, वैडरबर्न आदि ब्रिटिश सिविलियन्स के हाथों में रही। बाद में सार्वजनिक हित की भावना से प्रेरित हुए देशभक्त भी

इसमें सम्मिलित हुए और कालान्तर में यह संस्था भारतीय राष्ट्रीयता और देशभक्ति की प्रतीक बन गई: परन्तु इस समय तक अंग्रेज़ों की विषाक्त हिंदूविरोधी नीति घर कर चुकी थी। अंग्रेज़ी राजनीतिज्ञों द्वारा बनाई हुई राष्ट्रीयता की परिभाषा ही कांग्रेस ने अपना ली थी। अङ्गरेज़ों ने हमें बताया कि फ्रांस एक भूमिखंड है; इसलिये उस पर रहने वाले फ्रैंच कहलाते हैं। इसी प्रकार स्पेन में रहने वाले स्पैनिश, जर्मनी में रहने वाले जर्मन और इङ्गलैंड में रहने वाले अङ्गरेज़ हैं। ऐसे ही हिन्दुस्थान भी एक भूमिखण्ड (Territorial unit) है अत: यहां रहने वाले हिंदू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी—सब को मिल कर हिन्दुस्थानी राष्ट्र (National unit) बनाना चाहिये। एक देश में रहना ही राष्ट्रीयता के लिये परमावश्यक है, चाहे उस देश के लोगों का धर्म भाषा, संस्कृति, सभ्यता, इतिहास और राजनीतिक महत्वाकांक्षायें भिन्न ही क्यों न हों। ऐसी विचारधारा हमारे देश में प्रचलित की गई। हिंदुओं ने इस विचार का आदर किया, क्योंकि यह उनके विश्वबन्धुत्व के सिद्धान्त से मिलता था। इसलिये हिंदू भारी संख्या में कांगरेस में सम्मिलित हुए, परन्तु मुसलमान प्रारम्भ से ही कांगरेस से दूर रहे और आज तक उनकी यही मनोवृत्ति है। यह विचारधारा बुरी न थी यदि मुसलमान भी सामूहिक रूप से कांगरेस में सम्मिलित होकर हिंदुस्थानी-राष्ट्र का निर्माण करते। परन्तु हुआ कुछ और ही। हिंदू तो एक ही रात में हिंदू से हिन्दुस्थानी बन गये और मुसलमान आदि हुए, परन्तु मुसलमान मध्य और अन्त सब अवस्थाओं में मुसलमान ही रहे। क्रांतिकारी और कांग्रेसी-हिंदू सैंकड़ों की संख्या में फांसी पर झूले। हज़ारों अंदमान में सड़े और लाखों ने बन्दीवास भोगा, परन्तु मुसलमान

एक ओर खड़े होकर यह दृश्य देखते रहे। जब हिंदुओं ने इस त्याग से अङ्गरेजों से कुछ स्वतंत्रता छीन ली, तो झट से मुसलमान लपक कर आ पड़े और चिल्लाने लगे—"हमारा भाग भी लाओ!" हिंदुस्थानी राष्ट्र न बनने के मार्ग में सब से बड़ी रुकावट कांग्रेस द्वारा निर्मित राष्ट्रीयता की भ्रांत धारणा ही है। उसने यह समझने में भारी भूल की है कि प्रादेशिक एकता (Territorial unity) धर्म, भाषा, संस्कृति और इतिहास की एकता से कहीं बढ़ कर है, परन्तु यथार्थ यह नहीं है। अंगरेज़ इंग्लैंड रूपी देश में से ही एक राष्ट्र नहीं हैं अपितु भाषा, इतिहास और महत्वकाङ्क्षाओं की एकता के कारण एक राष्ट्र है। यदि राष्ट्रीयता के लिये एक देश में रहना ही पर्याप्त है तो आज से चार सौ वर्ष पूर्व भी इङ्गलैण्ड एक देश था। उस समय वहां के कैथालिक और प्रोटेस्टैंट परस्पर एक राष्ट्र बना कर क्यों नहीं रहे? क्योंकर इङ्गलैंड के कैथालिक एक देश न रहते हुए भी अपने प्रोटेस्टैंट राजा की अपेक्षा रोम के पोप की अधिक चिंता करते थे? क्योंकर इङ्गलैंड के प्रोटेस्टैंट ने एक देश में रहते हुए भी, अपने रोमन कैथालिक राजा के होते हुए भी, हालैंड के राजा विलियम को अपने देश पर शासन करने के लिये बुलाया था और क्योंकर हालैण्ड के कैथोलिक एक देश में रहते हुए भी अपने प्रोटेस्टैट राजा के विरुद्ध स्पेन के कैथालिक राजा से जा मिले? आस्ट्रिया और हंगरी के यूनियन का ही उदाहरण लीजिये। प्रादेशिक दृष्टि से वे दोनों एक थे और शताब्दियों तक एक रहे, दोनों देशों का राजा भी एक रहा। परन्तु भाषा, संस्कृति, इतिहास और महत्वाकाङ्क्षाओं की भिन्नता के सम्मुख प्रादेशिक एकता धरी रह गई और दोनों देश पृथक् हो गये। आप कहेंगे कि अब संसार बहुत आगे निकल गया

है। अब की दुनिया में भाषा, धर्म आदि की बातें राष्ट्रों के बनने-बिगड़ने में सहायक नहीं होतीं। मैं पूछता हूँ कि जर्मनी, पोलैंड, चैकोस्लोवेकिया और आयर्लैंड के उदाहरण तो आज ही की दुनियाँ के हैं? महायुद्ध के पश्चात् मित्र राष्ट्रों ने जर्मनी को दण्ड देने के लिये जर्मन राष्ट्र के अनेक टुकड़े कर दिये। कुछ जर्मन चैकोस्लोवेकिया में मिला दिये गये और चैक, स्लाव, हंगोरियन, पोल तथा सुडेटन जर्मनों को एक देश रख कर एक राष्ट्रीयता बनाने पर बाध्य किया गया- परन्तु क्या इतने मात्र से उन्होंने एक राष्ट्र बना लिया? कदापि नहीं, समय पाकर सुडेटन जर्मनों ने विद्रोह किया और अपनी जान खतरे में डाल कर वे जर्मनों से जा मिले। ऐसा क्यों हुआ? सुडेटन जर्मनों की प्रादेशिक एकता तो चैक लोगों के साथ थी परन्तु नहीं, उनकी सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और राजनैतिक एकता जर्मनों के साथ थी इसलिये वे एक राष्ट्र न बना सके। इसी प्रकार पौलैंड के जर्मन प्रादेशिक एकता के रहते हुए भी अपने पड़ोसी पोल लोगों से न मिल कर जर्मनों में जा मिले और यूक्रेनियन रूसियों से जा मिले। स्वयं जर्मनी में ही जर्मन और यहूदी एक देश में रहते थे। शताब्दियों से बसे हुए होने से यहूदी लोग जर्मनी के केवल नागरिक ही न थे, अपितु वह वहाँ की पार्लिमैंट और एग्ज़िक्यूटिव के भी सदस्य थे। इसके होते हुए भी यहूदी जर्मनों से मिल कर एक राष्ट्र न बना सके। क्योंकि उनकी नस्ल, संस्कृति, इतिहास और राजनीतिक इच्छायें जर्मनों से मेल न खाती थीं। परिणामत: वे जर्मनी से निकाले गये और हज़ारों मील दूर पैलस्टाईन में रहने वाले यहूदियों से जा मिले, जिन्हें उन्होंने कभी देखा तक न था, परन्तु जिनके साथ उनका धर्म, भाषा, नस्ल इति-

हास और राजनैतिक विचार मिलते थे। आयर्लैंड के प्रश्न को ही लीजिये। आयर्लैंड और इंगलैंड राजनीतिक दृष्टि में एक थे। शताब्दियों तक दोनों देशों की एक ही पार्लियामैंट रही। अंगरेज़ लोग आयरिश लोगों से विवाह करते थे। उनके साथ खाना खाते थे। दोनों ही अंगरेज़ी भाषा बोलते थे। दोनों का धर्म भी एक था परन्तु इन सब एकताओं के होते हुए भी अल्स्टर के अंगरेज़ और आयरिश एक राष्ट्र न बना सके। आयरिश लोग इंगलैंड से स्वतंत्र हो गये। उन्होंने अंगरेज़ी त्याग कर आयरिश को अपनाया और अल्स्टर के अंगरेज़ अपने पड़ोसी आयरिश के विरुद्ध समुद्र पार कर इंगलैंड के अंगरेज़ों से मिले। क्यों? आयरलैंड तो एक देश है, फिर अल्स्टर के अंगरेज़ और आयरिश एक राष्ट्र क्यों न बना सके? उत्तर मिलेगा कि दोनों में जातीय, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और राजनैतिक एकता न थी! सीरिया का उदाहरण अभी ही का है। सीरिया फ्रांस का संरक्षित राज्य (Mandate) है। इस के दो भाग हैं। सीरिया और लेबेनन। सीरिया के निवासी अधिकतर अरब हैं जो मुसलमान हैं, और लैबेनेनकी जनता अधिकतर लैबंटाईन है जो कि ईसाई है। एक देश में रहते हुए भी दोनों एक राष्ट्र नहीं बना सके। दोनों में इतनी उग्रता है कि सीरिया के अरब, लैबेनीज़ से उससे कहीं अधिक घृणा करते हैं जितना कि वे विदेशी फ्रैञ्च लोगों से करते हैं। इस उग्रता का परिणाम यह हुआ है कि सीरिया दो देशों में बांट दिया गया है। ऐसा क्यों हुआ? दोनों में धार्मिक, जातीय, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक एकता न थी। इतिहास के उदाहरणों को सामने रखते हुए सोचिये कि क्या केवल एक देश में रहने मात्र से ही हिन्दू व मुसलमान मिल कर एक हिन्दुस्थानी राष्ट्र बना लेंगे? और क्या

हिन्दू और मुसलमानों में धार्मिक, सांस्कृतिक ऐतिहासिक और राजनैतिक विचारों की एकता है? इसे जानने के लिये दो-चार उदाहरण ही पर्याप्त होंगे। सन् १९२० में टर्की पर आक्रमण हुआ और खिलाफ़त डगमगा उठी। खिलाफ़त मिटती देखकर देश भर के मुसलमान इतने उद्विग्न हुए कि वे उसे बचाने के लिए प्राणपन से कूद पड़े। ऐसा त्याग मुसलमानों ने भारतीय स्वतन्त्रताके लिये कभी नहीं दिखाया। पैलस्टाईन के अरबों और यहूदियों में झगड़ा हुआ। झगड़ा निपटाने के लिये ब्रिटिश सरकार ने 'पैलेस्टाईन विभाजन योजना' निकाली। यह सुनते ही हिन्दुस्तानी मुसलमानों ने वह तीव्र आंदोलन किया जैसा कि अरबों ने भी नहीं किया। वही मुसलमान जो पैलेस्टाईन के विभाजन से विदीर्ण हो उठे थे आज भारत में विभाजन की माँग पेश कर रहे हैं। मिश्र, टर्की, सीरिया आदि मुसलिम देशोंपर जर्मनों और इटालियनोंके भावी आक्रमण से भयभीत होकर यहां के मुसलमानों ने १ नवम्बर १९४० को 'स्वतन्त्रता-दिवस' मनाया और उन देशों की रक्षा के लिये परमात्मा से प्रार्थनाएं कीं, परन्तु हिन्दुस्थान की स्वतन्त्रता के लिये मुसलमानों ने आज तक कभी भी दुआ नहीं मांगी। वायसराय महोदय और जिन्ना साहब का पत्र व्यवहार तो आंखें खोलने वाला है। श्रीयुत् जिन्ना कहते हैं कि मुसलमान फौजें किसी मुसलमान देश के विरुद्ध न लड़ेंगी। कल्पना कीजिए कि यदि आज अफ़गानिस्तान हिन्दुस्थान पर आक्रमण करे तो मुसलमान फौजें, जो भारतीय फौज में आधी हैं, उन्हें न रोकेंगी, प्रत्युत् वे 'अल्लाहो अकबर' के नारे में सम्मिलित होकर मुसलिम राज्य स्थापित करने का यत्न करेंगी। यह कोई नवीन बात नहीं। खिलाफ़त आंदोलन के समय अलीबन्धु, अमानुल्ला के आगमन की बाट

अंग्रेज़ों ने भी गांधी जी की घोषणा सुनी। टर्की की लड़ाई में 'खिलाफ़त आन्दोलन' के कारण त्रस्त हुए अंग्रेज़ों ने निश्चय किया कि यदि स्वराज्य एकता से ही आना है तो हम उसे हर सम्भव उपाय से रोकेंगे। न होगी एकता और न मिलेगा स्वराज्य, न होगा बांस और न बजेगी बाँसुरी। इस प्रकार गांधी जी की नीति से हिन्दुओं में हीन-भावना, मुसलमानों में उत्कृष्ट-भावना और अंग्रेज़ों में विभेद-नीति (Divide and rule) को पूरे ज़ोर से चलाने का विचार उत्पन्न हुआ। परिणामतः जब जब कांग्रेस की ओर से एकता के लिये प्रयत्न किया गया वह विफल गया, क्योंकि वहां मुसलमान देशभक्ति के भाव से न आकर सौदा-मनोवृत्ति से आये और इस सौदागरी में ऊँची बोली सदा अंग्रेज़ों की ही रही। लखनऊ का समझौता, इलाहाबाद का एकता सम्मेलन, गोलमेज़ परिषद—सब का फल कुछ न निकला। ब्लैंक चेक, विशेषाधिकार, व्यवस्थापिका सभाओं में मुस्लिम सदस्यों की निश्चित संख्या, नौकरियों में अनुपात से अधिक भर्ती, मुस्लिम मनोरञ्जन के लिये हिन्दुओं पर अत्याचार—इन सब बातों से साम्प्रदायिक द्वेष की अग्नि और प्रज्वलित हो उठी। एक जाति को उसके अनुपात से अधिक देने का अभिप्राय यही है कि दूसरी जाति के उचित अधिकारों को छीना गया है। इस नीति से वह खाई जो दोनों जातियों के बीच पहले से विद्यमान है निरन्तर चौड़ी होती गई है। १६३५ के नये शासन विधान में हिन्दुओं ने बहुमत से कांग्रेस को वोट दिये और मुसलमानों के वोट अधिकतर मुस्लिम लीग को मिले। परिणामतः आठ प्रांतों में कांग्रेसी मंत्रीमण्डल बने और विरोधी दल मुस्लिम लीग का रहा। कांग्रेसी राज्य को हिन्दू राज्य कह कर बदनाम किया जाने लगा।

समस्त हिन्दू-बहुमत प्रान्तों में मुस्लिम लीग ने चिल्लाना शुरू किया कि हिन्दू प्रांतों में मुसलमान सताये जा रहे हैं। इनकी इस चिल्लाहट में मुस्लिम-बहुमत प्रांतों के वे मुसलमान जो अभी तक मुस्लिमलीग में सम्मिलित न थे और जो चुनाव में भी मुस्लिम लीग के विरुद्ध खड़े हुए थे, आकर मिल गये। सर सिकन्दर, मौ० फजलुलहक़ यूनस आदि ने मुस्लिम लीग की माँग का समर्थन किया। वह मुस्लिम लीग जो ४-५ वर्ष पूर्व राजनीति में विशेष महत्व न रखती थी, देखते ही देखते कांग्रेसी शासनकाल के दो ही वर्षों में बहुत शक्तिशाली संस्था बन गई। इस बहाने मुसलमानों ने समस्त भारत में अपना दृढ़ सङ्गठन कर लिया। मुसलमानों के शोर को कम करने के लिये कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने हिन्दुओं के धर्म, भाषा, संस्कृति और इतिहास तक पर चोट की और कहीं-कहीं पर तो हिन्दुओं को उनके नागरिक अधिकारों से भी वंचित कर दिया। परन्तु काँग्रेस ज्यों-ज्यों झुकती थी त्यों-त्यों मुसलमान और अधिक शोर मचाते थे, क्योंकि वे जानते थे कि कांग्रेस एकता के पीछे पागल है। हालत यहां तक बिगड़ी कि जब कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों ने त्यागपत्र दिये तो मुसलमानों ने मुस्लिम लीग की अध्यक्षता में 'मुक्ति दिवस' मनाया और परमात्मा से प्रार्थना की कि ये मन्त्रिमण्डल फिर न लौटें। मि० जिन्ना ने वायसराय से प्रार्थना की कि वे हिंदू-बहुमत प्रांतों में मुसलमानों के दुःखों की जांच के लिये 'रायल कमीशन' बुलायें। जब कांग्रेसी नेताओं ने कहा कि मुसलमानों को जो दुःख है वे हमें बतायें, तीसरी विदेशी शक्ति के पास न जायें तो जिन्ना साहब ने स्पष्ट कह दिया कि तुम कुछ हस्ती नहीं रखते। असली शक्ति ब्रिटिश सरकार है, अतः मैंने अपनी शिकायतें वायसराय महोदय

को बता दी हैं। मुस्लिम लीग की यह फटकार सुनकर वही कांग्रेसी नेता जो ब्रिटिश सरकार को बेईमान बताते थे, अब गवर्नरों से फर्याद करने लगे कि आप ही बताइये कि हमने मुसलमानों पर अत्याचार किया है या नहीं? गवर्नरों से प्रमाणपत्र पाने के लिये कांग्रेसी नेता व्याकुल हो उठे। कांग्रेसी लोग गवर्नरों का मुँह ही ताक रहे थे कि लाहौर में मुस्लिम लीग के अधिवेशन से मि० जिन्ना कहते सुनाई दिये—"अब मुसलमान अल्पमत बनकर किसी दूसरे के नीचे रहने को तय्यार नहीं हैं। मुसलमान अपने ही में एक राष्ट्र हैं। इसलिये हम अपने लिए एक राष्ट्रीय घर चाहते हैं। हिंदू-मुस्लिम समस्या का हल यही है कि भारत के दो टुकड़े कर दिये जायें—हिंदुस्तान और पाकिस्तान। जो लोग हिंदू-मुस्लिम समस्या का हल करना चाहते हैं उन्हें इस मांग को मानने में आनाकानी नहीं होनी चाहिये।" कांग्रेस ने विधान निर्मातृ-परिषद् (Constituent Assembly) की मांग की, मुसलमानों ने उसका विरोध किया। कांग्रेस राष्ट्रीय सरकार की मांग पर उतर आई। मुसलमानों ने उसे (Permanent Hindu majority) यह हिंदुओं का स्थिर बहुमत होगा कह कर ठुकरा दिया। श्री राजगोपालाचारी ने 'स्पोडिङ्ग आफर' दी कि जिसे मुस्लिमलीग भारत का प्रधानमंत्री बनाना चाहे बना ले, परन्तु मुसलमानों ने इसे भी असन्तोषजनक कह कर फेंक दिया और अपनी पाकिस्तान की मांग पर डटे रहे। मुसलमानों की दृढ़ता से घबरा कर कांग्रेसी नेता यहां तक झुके कि उन्होंने पाकिस्तान की मांग भी माननी आरम्भ कर दी। गांधी जी ने कहा कि हिन्दुस्तान एक सम्मिलित परिवार है, यदि कोई पृथक् ही होना चाहता है तो उसे कोई रोक नहीं सकता। राजगोपालाचारी

साहब ने तो यहाँ तक कह डाला कि यदि मुसलमान डटे ही रहेंगे तो गृहयुद्ध को रोकने के लिये पाकिस्तान की माँग भी हमें माननी ही होगी। कहाँ तो अमेरिका के प्रधान अब्राहम लिंकन हुए जिन्होंने गृहयुद्ध स्वीकार कर अमेरिका को टुकड़े होने से बचा लिया और कहाँ ये भारत के नेता हैं जो गृहयुद्ध के डर से देश को ही कटवा रहे हैं? मैं बताना चाहता हूँ कि इस देश में आज भी एक अब्राहम लिंकन विद्यमान है। उसका नाम वीर सावरकर है। वह गृहयुद्ध की धमकी के होते हुए भी भारत के टुकड़े न होने देगा। यदि किसी ने हिन्दुस्थान को पाकिस्तान बनाने का यत्न किया तो इस देश की एक-एक गली हल्दीघाटी बनेगी और एक-एक हिन्दू बच्चा राणा प्रताप बन कर लड़ेगा। आज मि० जिन्ना हमारी भारत माँ की छाती पर चढ़े उसे काटने पर उतारू हैं। पास में खड़े कांग्रेसी नेता गृहयुद्ध के भय से चुपचाप हैं परन्तु वीर सावरकर आते हैं और जिन्ना से कहते हैं कि छुरी मेरी छाती में मार, पर मेरी माँ के टुकड़े मत कर। गाँधी जी तो जिन्ना के राज्य को भी भारतीय बताते हैं। इसलिये उन्हें उस राज्य में रहने में कोई आपत्ति न होगी, परन्तु हिन्दू का राज्य उनके लिये स्वदेशी नहीं है। इसलिये यदि उन्हें कोई भारतीय मुसलमान शासन करने को न मिलेगा तो वे अमीर अमानुल्ला को ही भारत का राजमुकुट देने पर राज़ी हो जायेंगे। हमारे लिये तो जिन्ना का राज्य औरंगज़ेबी राज्य ही होगा, क्योंकि उसकी भावना भारतीय नहीं है। इसलिये कोई न कोई हिन्दू शिवाजी बन कर उस राज्य का अंत कर एक बार फिर से हिन्दू-पाद-पादशाही स्थापित करेगा। मेरा यह सब इतिहास बताने का अभिप्राय यही है कि मुसलमान हिन्दुओं के साथ मिल कर एक

राष्ट्र बनाने को तैयार नहीं हैं। उनके लिये प्रादेशिक एकता की अपेक्षा धार्मिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक एकता कहीं अधिक महत्व रखती है। यही कारण है कि यू० पी० के मुस्लिम विद्यार्थियों की सभा में भाषण देते हुए मौ० फज़लुलहक ने स्पष्ट शब्दों में कहा था "For us Islam is above any thing" अर्थात् हम मुसलमानों के लिये इसलाम सर्वोपरि चीज़ है। इसीलिये मौ० शौकतअली ने गन्दे से गन्दे मुसलमान को गाँधी से श्रेष्ठ बताया था और इसीलिये मोपला विद्रोह के नेता अलि मुसलियर ने कहा था कि हिन्दू मुस्लिम एकता का एक ही उपाय है; सब हिन्दू मुसलमान बन जायें और जो बनने से इन्कार करते हैं वे देशद्रोही हैं अतः मार देने योग्य हैं। अलि मुसलियर ने यह साफ़-साफ़ कह दिया, परन्तु दूसरे मुसलमान इसी बात को चिकनी-चुपड़ी भाषा में कहते हैं। परन्तु अभिप्राय सभी का एक है कि या तो इस देश के टुकड़े कर दिये जायें अथवा इस देश में मुस्लिम-राज्य स्थापित किया जाय। यह बात अब केवल काग़ज़ के पन्नों में ही न रह कर क्रिया में भी आ रही है। भाषा, पहरावा, बोल-चाल, रहन सहन, प्रत्येक बात में मुसलमान अपने को हिन्दुओं से पृथक् कर रहे हैं। शहरों में मुस्लिम और हिन्दू मुहल्ले पृथक्-पृथक बस रहे हैं। मिलों में हिन्दू और मुसलमान के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार का कपड़ा बन रहा है। मकान, हिन्दू और मुसलमानों के अलग-अलग नमूने के तैयार हो रहे हैं। स्कूल और कालेज हिन्दू-मुसलमानों के जुदा-जुदा खुल रहे हैं। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मुसलमान अपने को हिन्दू से पृथक् दिखाने के प्रयत्न में हैं। अवस्था यहाँ तक पहुँच गई है कि मुसलमान इस देश को अरब और ईरान के ढर्रे पर लाना चाहते हैं। कुछ वर्ष हुए जब मि०

जिन्ना कराची पहुँचे तो स्वागत में शहर को अरबी ढङ्ग से सजाया गया। तारकोल की सड़कों पर रेता बिछाया गया। खजूर के पेड़ लगाये गये। जलूस में ऊँटों की कतार थी जिन पर अरबी पहरावा पहने हुए सवार बैठे थे। यह मनोवृत्ति स्पष्ट बता रही है कि इस देश में एक नहीं, दो जातियाँ रहती हैं। उन दोनों में सांस्कृतिक, धार्मिक, ऐतिहासिक और भाषा सम्बन्धी ऐक्य असम्भव है। हाँ, राजनीतिक ऐक्य हो सकता है। हिन्दू इस देश के शासक होंगे और मुसलमानों को उनके अनुपात से स्थान दिया जायगा तथा उनकी भाषा, संस्कृति और धर्म की पूर्ण रक्षा की जायेगी। अतः अब हमारी मुसलमानों के प्रति यही नीति होनी चाहिये— "यदि तुम आते हो तो तुम्हारे साथ, यदि नहीं आते तो तुम्हारे बिना ही, और यदि तुम विरोध करते हो तो उसके होते हुए भी हम हिन्दू लोग स्वतन्त्रता की लड़ाई उसी वीरता से लड़ेंगे जैसी कि भूतकाल में हम लड़ चुके हैं" इसमें सन्देह नहीं कि इस नीति पर हमें भारी त्याग करना होगा। हमारे ऊपर भयंकर आघात भी होंगे, पर इससे घबराने की आवश्यकता नहीं है। संसार की कोई जाति बलिदान के बिना नही बनी। नाज़ी लोग जो आज संसार की सर्वोच्च शक्ति बने हैं, एक दिन था जब जर्मनी में १२-१२ नाजी एक ही दिन में गोली से उड़ा दिये जाते थे। उस समय नाज़ियों की दशा हिन्दुओं से भी बुरी थी। नाज़ियों को सभा करना भी दूभर था। सभाओं पर पत्थर फेंके जाते थे, आग लगाई जाती थी। सभी ओर हार ही हार दिखाई देती थी। यहाँ तक कि स्वयं हिटलर निराश होकर अपने को शूट करने के लिए हाथ में पिस्तौल लिये घूमता था। क्या इससे नाज़ी-बल शान्त हो गया? कभी नहीं, उन दिनों के त्याग ने ही आज की

नाज़ी-शक्ति का निर्माण किया है। अंगरेज़ लोग नार्वे, बेल्जियम, फ्रांस, सोमालीलैंड—सब जगह परास्त हुए, परन्तु क्या इससे अंगरेज़ी भावना मिट गई? कदापि नहीं। आज भी अंगरेज़ के एक-एक बच्चे को यह विश्वास है कि नैपोलियन की तरह हिटलर को भी हम किसी नवीन वाटरलू के रणक्षेत्र में परास्त करेंगे। अपने ही इतिहास को देखिये। कितने ही सिक्ख गुरु बलि चढ़ गये। गुरु गोविन्द और उनके चारों बच्चे मारे गये। बन्दा का भी प्राणान्त हो गया। फरुखसियर के राज्य में अस्सी-अस्सी रुपयों में सिक्खों का सिर बिकता रहा, परन्तु क्या इससे सिक्ख-भावना नष्ट हो गई? नहीं, यह सब होने पर भी रणजीतसिंह के नेतृत्व में पञ्जाब में वह सिक्ख राज्य कायम हुआ जिसकी धाक आज तक अफ़गानों के दिलों पर विद्यमान है। शिवाजी ने मुग़लों से विद्रोह किया। वे स्वयं लड़ते-लड़ते मर गये। शम्भाजी का वध किया गया। तानाजी, संताजी, बाजीप्रभु एक से एक योद्धा काम आ गये। पानीपत का संग्राम भी मराठे हार गये। महाराष्ट्र का कोई घर ऐसा न था जहाँ नवयुवती देवियाँ पति-वियोग में अपने हाथों से चूड़ियाँ तोड़ कर विधवा न बनी हों। क्या इतने से ही शिवाजी की भावना समाप्त हो गई? कदापि नहीं। यह सब कुछ हो चुकने पर भी मराठे फिर उठे। उन्होंने लाहौर जीता, दिल्ली जीती, मुल्तान छीना और अटक तक के क़िले पर एक दिन विजयी गेरुवा ध्वज फहरा दिया। मराठे सिन्धु नदी से दक्षिण समुद्र तक के अधिपति बन गये। एक बार फिर से हिन्दू राज्य स्थापित हो गया। याद रखिये, सिन्ध, फ्रांटियर और बङ्गाल के हिन्दुओं का बलिदान कभी व्यर्थ न जायगा। उनके रक्त की गिरी एक-एक बूंद हिन्दूध्वज हो

कर लहरायेगी ! यह देश सदा हिन्दुस्थान ही रहेगा—कभी पाकिस्तान बनने नहीं पावेगा !!

[यह भाषण श्री पं॰ चन्द्रगुप्त जी वेदालंकार ने मेरठ-बन्दीगृह से छः मास का बन्दीवास समाप्त कर दिल्ली पधारने पर दिया ।]

चुप थी। मुँह से कुछ न बोलती थी। संकेत करना भी उसे अभीष्ट न था। उस चित्र का उत्तर वह मुझ से ही चाहती थी। बन्धुओ! वह किसी देवता या महात्मा का चित्र न था। अभिनेता व अभिनेत्री की भावना उससे कोसों दूर थी। उस चित्र के बीच में एक छोटा सा शिशु बैठा था और दोनों ओर दो मनुष्य खड़े थे, जो उसे अपनी २ ओर आने का संकेत कर रहे थे। इस चित्र में उस देवी ने क्या भाव भरा था, सो मैं नहीं जानता। सम्भव है उसने शिशु को चीन के रूप में और दो व्यक्तियों को रूस और जापान के रूप में चित्रित किया हो। परन्तु मैं तो वह भाव बताना चाहता हूँ जो उसे देखते ही मेरे मन में उठा। मैंने इस दिव्य शिशु को भारत रूप में और दो व्यक्तियों को दो भाषाओं का प्रतिनिधि जाना। एक हिन्दी का और दूसरा उर्दू का। एक वीर-शिरोमणि सावरकर और दूसरे मुहम्मद अली जिन्ना। आज विचारना है कि भारत रूपी शिशु दोनों में से किसका अनुसरण करे?

मुस्लिम शासकों का हिन्दी प्रेम

श्रीयुत जिन्ना और उनके साथियों का कहना है कि हिन्दी हिन्दुओं की भाषा है मुसलमानों की नहीं, मुसलमान तो उर्दू ही बोलते हैं अतः उर्दू ही भारत की राष्ट्रभाषा हो सकती है। जहां तक इतिहास और न्याय की मांग है मुझे दुःख से कहना पड़ता है कि मैं इस कथन में तनिक भी सचाई नहीं पाता हूँ। यदि २००–३०० वर्ष पीछे के भारतीय इतिहास पर दृष्टिपात किया जाय तो ज्ञात होगा कि मुस्लिम काल में हिन्दी को वह स्थान प्राप्त था जो आज ब्रिटिश राज्य में भी उसे प्राप्त नहीं है। मुस्लिम शासक हिन्दी से उतना ही प्रेम करते थे जितना फ़ारसी से। वे

हिन्दी पर इतने रीझे कि उन्होंने अपने सिक्कों तक पर उसे स्थान दिया। कुतुबुद्दीन ऐबक से लेकर पानीपत की प्रथम लड़ाई अर्थात् ५८६ हिज़री से लेकर ६६४ हिज़री तक ३७५ वर्ष होते हैं। इस बीच में १६ सुल्तान हुए और एबक, खिलजी, तुगलक, सैय्यद और लोदी—इन पांच घरानों ने शासन किया। इन पठान शासकों के सिक्कों पर निरपवाद रूप से देवनागरी अक्षरों और हिन्दी का प्रयोग हुआ है। सब के नामों के पूर्व 'श्री' शब्द का व्यवहार है। स्मरण रहे यह वही 'श्री' शब्द है जिसके प्रयोग से जिन्ना और उनके साथी आज नाक-भौं चढ़ाते हैं और जिसे वे कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रतीक-चिन्ह (सील) पर भी देखना पसन्द नहीं करते, परन्तु इन्हीं के पूर्वज आज से कुछ ही वर्ष पूर्व इसी शब्द को अपने नाम के पूर्व लगाने में गौरव समझते थे। वे 'मियाँ' या 'मौलवी' कहलाने की अपेक्षा 'देवः', 'वीरः', 'हमीरः', 'आसाकरी' आदि कहलाना अधिक रुचिकर मानते थे यथा—'श्री हमीर मुहम्द साम', 'सुरिताण श्री समसदीन', 'श्री सुलतां गयासुदीं' आदि। इतना ही नहीं, मुहम्मदगौरी तो और आगे तक गया। उसने १०२७ ई० में लाहौर से एक चाँदी का सिक्का चलाया था जिसके एक पृष्ट पर नागरी लिपि में संस्कृत भाषा में यह वाक्य खुदा है "अव्यक्तमेकं मुहम्मद अवतार नृपति महमूद" और दूसरे पृष्ट पर है—'अयम् टंकम् महमूदपुर लाहौर घटिते हिजरियेन संवति ४१८।" मुगलकाल में सम्राटों की ओर से पारितोषिक रूप में जो पदक अमीर-उमरावों को बांटे जाते थे उन पर भी हिन्दी और देवनागरी अक्षरों को स्थान था। मैं पूछता हूँ क्या यह मुस्लिम शासकों का हिन्दी के प्रति दृढ़ अनुराग का परिचायक नहीं है? इन ६००–७०० वर्षों में भारत में जिन्ना

जैसा कोई व्यक्ति पैदा नहीं हुआ जो उन के हिन्दी-प्रेम को छिन्न-भिन्न करता। राजनीति की दृष्टि से भी यदि मुसलमानों को इस देश में शासन करना था और प्रजा का सहयोग प्राप्त करना था तो उन के लिये आवश्यक था कि वे इस देश की भाषा हिन्दी को अपनाते। जिस भाषा को मुस्लिम शासकों ने बिना किसी दबाव के स्वयं सिक्कों तक पर स्थान दिया और जिसके प्रयोग में न केवल आत्मीय आनन्द, अपितु गौरव भी अनुभव किया उसे कौन न्यायप्रिय व्यक्ति केवल हिन्दुओं की भाषा कह कर ठुकरा सकता है ?

हिन्दी लोकभाषा तथा राजभाषा के रूप में

यह एक सर्व विदित तथ्य है कि एक समय था जब भारत की राजभाषा और सम्भवतः लोकभाषा भी संस्कृत थी। इसका प्रभाव मुहम्मद गौरी के सिक्के पर खुदे वाक्य से स्पष्ट है, परन्तु धीरे-धीरे यह प्रथा बदलने लगी। सर्वसाधारण में संस्कृत के स्थान पर प्राकृत का प्रचार होने लगा। यही प्राकृत कालक्रम से हिन्दी के रूप में बदल गई। मुसलमानों के आगमन के समय प्राकृत हिन्दी का रूप धारण कर सर्वसाधारण की भाषा बन रही थी और शासक लोग जनता से सम्पर्क रखने के लिये लोकभाषा को राजभाषा के रूप में अपना रहे थे। १६ वीं से लेकर १८ वीं शताब्दी तक के अनेक विदेशी व्यापारियों और प्रचारकों ने अपने लेखों में इस बात की पुष्टि की है:—

(क) सन् १७२७ में हैमिल्टन लिखता है—"मैं हिन्दुस्तानी में बोल रहा था जो मुग़लों के विस्तृत राज्य की प्रचलित भाषा है।"

(ख) सन् १६०४ जेरोम ने आगरे से पादरी कोसों के

विषय में लिखा है—"उस ने फ़ारसी भाषा सीख ली है और हिन्दुस्तानी सीखनी आरम्भ कर दी है जो इस देश की भाषा है। उस की ज्ञानपिपासा और योग्यता ऐसी है कि वह शीघ्र ही अरबी पर भी अधिकार प्राप्त कर लेगा।"

(ग) सन् १६६७ में वालेण्टीन हिन्दुस्तानी भाषा की चर्चा करते हुए लिखता है—ऐबिसीनियां का राजदूत इस भाषा में बातचीत करता था और ट्रिप्पुआ के गवर्नर का मन्त्री उस का अभिप्राय समझा था।"

(घ) सन् १६७३ में फ्रायर लिखता है—"दरबार की भाषा फ़ारसी है और जनता की भाषा हिन्दुस्तानी है।"

(ङ) १५८१ में पादरी ऐक्वा वीवा अपने पत्र में लिखता है—"जब मैं अपने दुभाषिये डोमिंगो पिरीज़ का एक हिन्दुस्तानी स्त्री से विवाह करा रहा था तो मैं तो फ़ारसी बोलता था और बादशाह अकबर जो वहां विद्यमान् था, फ़ारसी वाक्यों का हिन्दुस्तानी में अनुवाद करता जाता था।"

(च) १८३३ में आर्म लिखता है—"पांडीचरी के दो कौंसिलर कैम्प में गये हैं। उन में एक अच्छी तरह हिन्दुस्तानी और फ़ारसी जानता है, क्योंकि सुलतानों के दरबार में यही दो भाषायें व्यवहार में आती हैं।"

ये उद्धरण 'जरनल रायल एशियाटिक सोसायटी' बङ्गाल सन् १८८६ हाब्सन जाब्सन से उद्धृत किये गये हैं। इन उद्धरणों में 'हिन्दुस्तानी' शब्द 'उर्दू' के अर्थ में प्रयुक्त न हो कर उस भाषा के लिये आया है जो अरबी-फ़ारसी से अतिरिक्त व्यवहार में आती

थी, जिसे हिन्दू तथा मुसलमान दोनों बोलते थे और जो लोक-भाषा के साथ-साथ राज्य में भी आदर पाती थी। यह निश्चित ही 'हिंदी' थी। यह बात उद्धरणों की भाषा से ही पुष्ट हो जाती है कि वह हिंदी है अथवा 'उर्दू'?

हिन्दी के उत्पादक मुसलमान भी थे

मुसलमानों का हिन्दी प्रेम यहीं तक नहीं रुका। उन्हों ने अपनी प्रतिभा के चमत्कार भी हिन्दी में दिखाये जिनके लिए आज भी हिन्दी साहित्य अपने को गौरवान्वित अनुभव करता है। मुस्लिम काल में लगभग ३६० मुस्लिम लेखक ऐसे हुए जिन्होंने हिन्दी को अपनाया। ये सब हिंदू से मुसलमान न बने थे। इन में से अनेकों विदेशी थे और यदि ये सब मत-परिवर्तित ही मान लिये जायें तो ८ करोड़ मुसलमान क्या अरब और ईरान से आये हैं? इनमें से भी तो ९०% कन्वर्ट हैं और केवल १०% विदेशी हैं। इनको भी यहां रहते हुए इतना समय बीत गया है कि इनकी भाषा और इतिहास वही हो गया है जो इनके पड़ौसी हिन्दू का है। अब ये भी स्वदेशी बन गये हैं। इनको भी वही अधिकार प्राप्त हैं जो हिन्दू को प्राप्त हैं। मुसलमानों को दो में से एक विकल्प चुनना होगा। या तो वे अपने को विदेशी मानें तब उन्हें अधिकार मांगने का अधिकार नहीं और यदि अधिकार मांगते हैं तो इसका अभिप्राय यह है कि वे अपने को भारतीय समझते हैं। जब भारतीय हैं तो उन्हें अपनी भाषा भी भारतीय बनानी होगी। आगे कुछ मुस्लिम कवियों की कविताएं दी जाती हैं जिन में भाषा के साथ-साथ भारतीय की भावों भी सुन्दर झलक है:—

(क) मीर खुसरो, १४वीं शताब्दी—

आदि कटे से सबको पालै, मध्य कटे से सबको घालै ।
अंत कटे से सबको मीठा, 'खुसरो' मैं आंखों डीठा ।। 'काजल'

(ख) मलिक मुहम्मद जायसी, १६वीं शताब्दी—

सरवर-तीर पद्मिनी आई, खोपा छारी केस मुकलाई ।
ससिमुख अंग मलयगिरि वासा, नागिन झांप लीन्ह चहुंपासा ।।

(ग) अकबर शाह १७वीं शताब्दी—

जाको जस है जगत् में, जगत् सराहै जाहि ।
ताको जीवन सफल है, कहत 'अकब्बर' साहि ।।

(घ) रहीम (अब्दुल रहीम खानखाना) १७ वीं शताब्दी—

चित्रकूट में रमि रहे, 'रहिमन' अवध नरेश ।
जा पै विपदा परत है, सो आवत यहि देश ।।
धूर धरत निज सीस पै, कहौ 'रहीम' केहि काज ।
जा धूरी मुनि पतनी तरी, सो ढूंढत गजराज ।।

रहीम ने संस्कृतमय हिन्दी में भी पद्य-रचना की । उसे भी देखिये :—

कलित कलित माला वा जवाहर खड़ा था,
चपल चखनवाला चाँदनी में खड़ा था ।
कटि-तट विच मेला पती सेला नवेला,
अलिवन अलबेला यार मेरा अकेला ।।

(ङ) रसखान, १७ वीं शताब्दी—

मोर-पखा सिर ऊपर राखिहौं, गुंज की माल गले पहिरौंगी ।
ओढ़ि पिताम्बर लै लकुटि बन, गोधन ग्वारन संग फिरौंगी ।
भाव तो मेरा वही 'रसखानि' सो, तेरे कहे सब स्वांग भरौंगी ।

या मुरली मुरलीधर की, अधरान धरी अधरान धरौंगी ॥
अपि च—
या लकुटी अरु कामरिया पर, राज तिहूँ-पुर को तजि डारौं।
आठहुं सिद्धि नवौं निधि के सुख, नन्द की गाय चराय बिसारौं।
नैनन सों 'रसखान' जबै ब्रज के, वन-बाग तड़ाग निहारौं।
केतिक हूं कलधौत के धाम करीर के कुञ्जन ऊपर वारौं।
किञ्च—
मानुष हों तो वही रसखान' बसौं सङ्ग गोकुल गांव के ग्वारन।
जो पशु हों तो कहा बसु मेरो, चरौं नित नन्द की धेनु मंझारन।
पाहन हों तो वही गिरी को जो कियो हरि छत्र पुरन्दर धारन।
जो खग हों तो बसेरो करौं मिलि कालिंदी-कूल कदंब की डारन॥

(च) मुबारक, १७वीं शताब्दी—

बाजत नगारे मेघ ताल देत नदी नारे,
झींगुरन झांझ भेरी बिहङ्ग बजाई है।
नीलग्रीव नाचकारी कोकिल अलापचारि
पौन बीनधारी चाटि चातक लगाई है।
मनिमाल-जुगुनू 'मुबारक' तिमिर थार,
चौमुख चिराक चारु चपला चलाई है।
बालम बिदेस गये दुख को जनमु भयो,
पावस हमारे लाई बिरह बधाई है॥

(छ) ताज, १७ वीं शताब्दी—

सुनो दिलजानी मेरे दिल की कहानी,
तुम दस्त ही बिकानि बदनामी भी सहूँगी मैं।
देवपूजा ठानी मैं नमाज़ हू भुलानी,
तजे कलमा कुरान सारे गुननि गहूँगी मैं।

साँवला सलोना सिरताज सिर कुल्लेदार,

तेरे नेह दाघ में निदाघ ह्वै दहूंगी मैं।

नन्द के कुमार कुरबान तानि सूरत पै

हौं तो मुगलानी हिन्दुवानी ह्वै रहूँगी मैं।

अपि च—

छैल जो छबीला सब रङ्ग में रङ्गीला बड़ा,

चित्त का अड़ीला कहूँ देवतों से न्यारा है।

माल गले सोहै नाक मोती सेत सोहै,

कान मोहे मन कुण्डल मुकुट सीस धारा है,

दुष्टजन मारे सतज़न रखवारे 'ताज'

चित हित वारे प्रेम प्रीति कर बारा है।

नन्द जू का प्यारा जिन कँस को पछारा,

वह वृन्दावन वारा कृष्ण साहेब हमारा है॥

(ज) आलम १८वीं शताब्दी—

जा घर कीन्ह विहार अनेकन, तो घर काँकरी बैठि चुन्यो करैं।
जा रसना सों करी बहु बातन, ता रसना सों चरित्र गुन्यो करैं।
आलम जौन से कुञ्जन में करि, केलि तहां अब सीस धुन्यो करैं।
नैनन में जो सदा रहते तिन की, अब कान कहानी सुन्यो करैं।

(झ) शेख रङ्गरेजिन, १८वीं शताब्दी—

प्रेम रङ्ग पगे जगमगे जगे जामिनी के,

जोबन की जोती जगि जोर उमगम है।

मदन के माते मतवारे ऐसे घूमत हैं,

झूमत हैं झुकि-झुकि झँपि उघरत है।

'आलम' सो नवल निकाई इन नैनन की,

पाँखुरी पदुम पै भँवर थिरकत है।

चाहते हैं उड़िबे को देखत मयंक मुख,
जानते हैं रैनि ताते ताहि में रहत हैं ॥

(ञ) वाहिद, १८वीं शताब्दी—

सुन्दर सुजान पर मन्द मुसकान पर,
बाँसुरी की तान पर ठौरन ठगी रहै ॥
मूरति विशाल पर कंचन की माल पर,
खंजन सी चाल पर खौरन खगी रहै ॥
भौहे धनु नैन पर लोने युग नैन पर,
शुद्ध रस बैन पर 'वाहिद' पगी रहै ॥
चंचल से मन पर साँवरे बदन पर,
नन्द के नन्दन पर लगन लगी रहै ॥

(ट) रसलीन, १८वीं शताब्दी—

तिय सैसव जीवन मिले भेद न जान्यो जात ।
प्रात समै निसि दौस के दुवौ भाव दरसात ।

(ठ) नूरमुहम्मद, १६वीं शताब्दी—

एक कहा लट सों मुख शोभा, होती अधिक लखि मुरछा लोभा ।
एक कहा लट जामिनि होई, राति जानि जोगी गा सोई ।
एक कहा मुख तिल लट कारी, संबुल भँवर अहइ फुलवारी ।
एक कहा लट नागिन कारी, डसा गरल सो गिरा भिखारी ।
एक कहा मुख ससिहि लजावा, लट जोगी को मन अरुझावा ।
सबन बखाना जो जस बूझा, इन्द्रावती कहँ आगम सूझा ।
कहा तपी अस कहते आगे, गरब न करूँ सुन्दरी डर त्यागे ।
यह मुख यह तिल यह लटकारी, अंत होई इक दिन सब छारी ।

ऐसे एक नहीं, पांच नहीं, बीस नहीं, सौ नहीं, कासिमशाह, फाज़िलशाह, आदिलशाह, मुहम्मदशाह, मुहम्मदबाबा, यूसुफखाँ, याकूबखाँ, ईसबीखां, आसिफखां, अकबरखां, आज़मखां, अलिमुहिबखां, अब्दुलरहमान, अब्दुलज़लील, अहमदुल्ला, रहमतुल्ला, काजी कदम, काज़िमअली, जनुद्दीन, मीर अब्दुलवाहिद, मीर-अहमद, मीरहसन, मीररुस्तम, खुमान, महबूबहुसैन आदि तीन सौ से भी अधिक ऐसे मुसलमान हुए जिन्होंने हिन्दुओं की ही भांति हिन्दी को अपनाया। वे मुसलमान थे और अन्त तक मुसलमान रहे। परन्तु इसलाम को मानते हुए भी उन्होंने भारतीय भाषा और भारतीय महापुरुषों का आदर किया। हिन्दी केवल हिन्दुओं की ही बपौती नहीं। यह तो दोनों के सम्मिलित प्रयत्नों से फूली-फली है। हिन्दी देवी की यदि एक भुजा हिन्दू है तो दूसरी मुसलमान। हिन्दी साहित्य के रथ का यदि एक चक्र हिन्दू है तो दूसरा मुसलमान। पण्डित सूर्यकान्त शास्त्री के शब्दों में यदि हिन्दी साहित्य के इतिहास के हिन्दू कवि निकाल दिये जायें तो सूर्योदय नहीं होगा और यदि मुसलमान कवि निकाल दिये जायें तो चन्द्रोदय नहीं हो सकता। जहाँ सूर, तुलसी, केशव, कबीर, आदि हिन्दुओं ने इसे बढ़ाया वहाँ रहीम, रसखान, वाहिद और आलम ने भी इसे उठाने में कोई कसर न रखी। सम्भवतः इसी को ध्यान में रख कर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने एक स्थान पर लिखा है—"इन मुसलमान हरिजनन पै कोटि हिन्दू वारिये।" इसी को दृष्टि में रख कर जायसी ने लिखा है—"तुर्की अरबी हिन्दवी भाषा जेति आहि, जा में मारग प्रेम को सबै सराहै ताहि।"

उर्दू की उत्पत्ति

मैं उर्दू के समर्थकों से पूछना चाहता हूँ कि यदि मुसलमान

मुस्लिम शासन काल में हिन्दी नहीं बोलते थे तो क्या बोलते थे? किस भाषा द्वारा वे सर्व साधारण से सम्पर्क रखते थे? क्योंकि उर्दू की उत्पत्ति तो शाहजहाँ के शासनकाल में—१५ वीं शताब्दी में हुई। उर्दू का उत्थान बीजापुर और गोलकुण्डा की मुस्लिम रियासतों से हुआ। मुस्लिम शासकों ने फ़ारसी लिपि में एक भाषा लिख कर अपने सैनिकों को दी जिस का नाम उर्दू रखा गया। 'उर्दू का अर्थ ही 'फ़ौजी बाज़ार' है। यदि मुसलमानों की भाषा 'उर्दु' है तो क्या मुसलमान मुझे बता सकेंगे कि १६ वीं शताब्दी से पूर्व वे किस भाषा में बात चीत करते थे? उस समय तक उन्हें भारत में शासन करते पाँच छः सौ वर्ष हो गये थे? इस सुदीर्घकाल में जन-साधारण के साथ वे किस भाषा का प्रयोग करते थे? मानना पड़ेगा कि हिन्दी का। मैं तो इससे भी आगे बढ़कर कहता हूँ कि प्रारम्भिक उर्दू हिंदी की ही एक शैली थी। किन्तु कालान्तर में उर्दू वालों ने अपनी भाषा में से सुगम देशी शब्दों को भी हटा कर उसे अरबी फ़ारसी से परिपूरित कर दिया। परिणाम यह हुआ कि वे एक ऐसी भाषा का प्रयोग करने लगे जिसका अस्थि-पिंजर तो भारतीय है, परन्तु जिस की आत्मा अरब और ईरान की घाटियों से जीवन पाती है। अभी पिछले दिनों एक मुसलमान ने काका कालेलकर जी से कहा था—"हम इस मुल्क में राज करने आये हैं सो अपनी तहज़ीब और जुबान छोड़ देने की गर्ज़ से नहीं। अगर हम ने फ़ारसी की जगह उर्दू को अपनाया तो इस उम्मीद से कि हम फ़ारसी से जो काम लेते थे वह आइन्दा उर्दू से भी लिया जा सकेगा। उर्दू को हम अपनी इसलामी तहज़ीब से बिलकुल लबरेज़ कर देना चाहते हैं। इस लिये यदि हम कौमी जुबान के नाम पर देसी लफ्ज़ों की तादाद बढ़ाते जायेंगे तो इस मुल्क में हमारी तह-

ग़रीब खतरे में आ पड़ेगी।" हमें समझ नहीं आता कि मत परिवर्तन होते ही मुसलमान का इतिहास और संस्कृति कैसे बदल जाती है? ९०% मुसलमान इसी देश के हैं और शेष भी सैकड़ों वर्षों से इसी देश का अन्न-जल सेवन करने से यहीं के बन गये हैं। वे भी हिन्दू की ही भांति व्यास, बाल्मीकि आदि ऋषियों के वंशज हैं। हिन्दू संस्कृति और साहित्य उनके लिये 'ओल्ड टैस्टामेंट' के समान है। यह विचार मुसलमान की समझ में नहीं आता। ऐसी धारणा उनकी क्योंकर बनी इस पर कुछ प्रकाश १९९५ संवत् के कार्तिक मास की 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में श्री पं० रामचन्द्र शुक्ल के लेख से कुछ उद्धाहरण देकर डालना चाहता हूँ। प्रारम्भिक उर्दू लेखक जिस भाषा का प्रयोग करते थे वह फ़ारसी लिपि में लिखी हिन्दी ही थी। दक्षिणी उर्दू कवियों ने कई प्रबन्ध-काव्यों की रचना की थी। उनमें से एक का नाम है 'करबल-कथा'—यह 'कथा' शब्द आज की उर्दू में कहां स्थान पा सकता है? शृङ्गार की प्रेम कहानियों की रचना भी उर्दू कवियों ने की। 'वज्ही' की पद्य रचना का स्वरूप देखिये:—

न भुइं पर बसे न आसमान में,
रहा शद उसी नार के ध्यान में।
भुज़ाई चंवल धन वो यों शाह कों,
कि लुभवाए ज्यों कहरुबा काह कों॥

लगे शाह उसासां भरन आह मार,
कि नज़दीक ना है व गुनवतं नार।

'अफ़ज़ल' के 'बारह मासा' की भाषा देखिये:—
सखी रे! चैत रितु आई सुहाई॥

अजहुं उम्मीद मेरी वर न आई।
रहे हैं भंवर फूलों के गले लाग,
मेरे सीना जुदाई की लागी आग ॥
सखी दिन-रैन मुझे नागिन डसत है,
फिरूँ दौरी तमामै जग हंसत है ॥

'वली' की कविता में देखिये :—
इस रैन अंधेरी में मत भूल पड़ू तिससूं।
टुक पांव के बिछुओं की आवाज़ सुनाती जा ॥
मुझ दिल के कबूतर को पकड़ा है तेरी लट ने।
यह काम धरम का है टुक इसको छुड़ाती जा ॥

पीछे शाह 'सादुल्लाह गुलशन' ने वली से निवेदन किया "ये इतने फारसी के मज़मून जो बेकार पड़े हैं, इन्हें काम में ला।" फिर क्या था, वली ने अपना रुख ही पलट लिया और वे ऐसी कविता करने लगे :—

गेब सनम को खयाले बाग़ हुआ, तालिबे नश्शाए फ़राग हुआ।
फ़ौज़ उश्शाक़ देख कर जानिब, न ज़नी साहबे दिमाग़ हुआ ॥

सन् १७०२ में दिल्ली में "हातिम" नाम के एक कवि थे। उन्होंने तो देसी शब्दों का सर्वथा ही बहिष्कार कर डाला! उसका वर्णन उन्होंने स्वयं ही इस प्रकार किया है—"लस्सान अरबी व ज़बान फारसी की क़रीबुल फ़हम व कसीरुल इस्त अमाल बाशद व रोज़मर्रा देहली की मिर्ज़ायाने हिन्द फसीहाने रिंद दर महावर: बारंद मंजूर दाश्त: सिवाय आँ ज़बान हिन्दवी कि आराँ भाखा गोयंद माकूफ़करद:।" तात्पर्य यह है कि 'हातिम' ने अरबी-फ़ारसी के शब्द ला-लाकर रखे और हिन्दी शब्दों को निकाल फेंका।

इतने पर भी उर्दू कविताओं में भारतीय कथा-प्रसंग विद्यमान रहे। यथा:—

ख़ुदा के नूर का मथ के समुन्दर, यही चौदह रतन काढ़े हैं बाहर।
अगर फ़हमीद हिकमत आशना है, इसी नुसखे में चौदह विद्या हैं।

जो थोड़ा सा भारतीयपन उर्दू में था वह 'नासिख' के हाथों से दूर किया गया। फिर तो उर्दू, हिन्दी से ऐसी दूर भागी कि उसने अपना पृथक् ही क्षेत्र बना लिया। उस क्षेत्र से जगत्, चंचल, नार, गुन, अकास, धरम, धन, करम, दया, बीर आदि शब्द निकाल बाहर कर दिये गये। इसी प्रकार कमल, भँवरा बसन्त, कोकिल, वर्षाऋतु, सावन, भीम अर्जुन, कर्ण भोज के सुन्दर उपाख्यान अपवित्र समझ कर छोड़ दिये गये। इस प्रकार उर्दू यहां की परम्परा, इतिहास और साहित्य से बहुत दूर अरब और ईरान के साहित्य, इतिहास और उपाख्यानों से परिपूर्ण हो गई। उर्दू का समस्त वातावरण ही विदेशी है। उसके छन्द विदेशी हैं। उर्दू कवि उपमायें ढूंढ़ने अरब और फ़ारस जाता है। शिरीं-फ़रहाद लैला-मजनू आदि के उदाहरण ही उसे सूझते हैं। नल-दमयन्ती, दुष्यन्त-शकुन्तला तथा सावित्री-सत्यवान् के नाम उसे याद ही नहीं आते। उर्दू का वातावरण इतना विदेशी है कि एक हिन्दू कभी भी उर्दू लिखते हुए 'बुतों' को गाली देता है और अपने को 'काफ़िर' कहाता है। वह मुसलमान बनने की आकांक्षा करता है। उर्दू भारत के सामान्य जीवन से बहुत दूर चली गई, जान बूझ कर गई, हिन्दुओं के विरोध के कारण नहीं। हिन्दू तो इतने पर भी उसे कुछ-कुछ अपनाते रहे। भेद का बीज मुसलमानों ने स्वयं बोया। जिस हिन्दी की रहीम, रसखान, वाहिद और

आलम जैसे प्रख्यात कवियों ने अपने सुदीर्घ जीवन में काव्य के श्रेष्ठतम ग्रन्थों से प्रसारित किया था, उसे आगे के मुसलमानों ने हिन्दुओं के लिये सीमित कर दिया। जिस भाषा में सय्यद इंशा अल्ला खाँ ने सुन्दर २ कहानियाँ लिखी थीं वह अब हिन्दुओं की भाषा कह कर अपमानित की जाने लगी। जिस सरल-सुबोध भाषा में मीर खुसरों ने मनोहर कहावतें बताई थीं उसे अब हिन्दू जाति के भाग्य पर छोड़ दिया गया। तब से अब तक मुसलमान अपनी पृथक् भाषा का दावा करते आ रहे हैं। यह दावा कहाँ तक सत्य है? आइये, इसकी भी परीक्षा कर लें।

उर्दू ८ करोड़ की भाषा नहीं

मुसलमानों की ओर से प्रबल रूप से यह कहा जाता है कि भारत के ८ करोड़ मुसलमान उर्दू बोलते हैं। इसकी विचित्रता तब और भी बढ़ जाती है जब कुछ राष्ट्रीय लोग सत्य को ओझल कर केवल मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिये कहते हैं कि मुसलमान तो सब उर्दू बोलते हैं। कोई-कोई तो यहाँ तक कह डालता है, 'उर्दू तो हिन्दू-मुस्लिम कल्चर के मेल से वजूद में आई हुई एक मुश्तरका ज़बान है।" ऐसे लोगों से हमें पूछना है कि उर्दू की प्राचीनता सिद्ध करने के लिये दक्षिणी कवियों की जो लम्बी सूची छपी है क्या उस में कोई हिन्दू भी है? 'आबेहयात' को ही लीजिये, उसके सबके सब कवि मुसलमान हैं। इतने पर भी न जाने कैसे इसे 'मुश्तरका जबान' कहा जाता है? मेल से पैदा हुई भाषा की क्या यही सूरत होती है? इन महानुभावों से दूसरा प्रश्न यह करना है कि क्या आप ने सारे भारत का कभी दौरा भी किया? क्या आप ने यह जानने का यत्न भी किया कि विभिन्न

प्रांतों के मुसलमान क्या बोलते हैं ? मुसलमानों की भारत में सबसे अधिक संख्या बङ्गाल में है। २३/४ करोड़ से अधिक मुसलमानों की मातृभाषा बङ्गाली है। बिहार का मुसलमान बिहारी, उड़ीसा का उड़िया, आंध्र का आंध्री, मद्रास का मद्रासी, महाराष्ट्र का मराठी, गुजरात का गुजराती, हिंदप्रांत का हिंदी, सिंध का सिंधी और पंजाब का पञ्जाबी बोलता है। जिस २ प्रांत में मुसलमान रहता है उसकी भाषा वही है जो उसका पड़ोसी हिन्दू बोलता है। प्रांतीय भाषा के बिना उसका एक दिन जीना दूभर हो उठे, जिस प्रकार जर्मन न जानने वाले का जर्मनी में रहना कठिन है। मद्रास के तो मुसलमानों को यह भी पता नहीं कि उर्दू का आरम्भ कौन हाथ से होता है। उन्हें तो इसके स्वरूप का भी ज्ञान नहीं। स्वयं श्रीयुत् जिन्ना गुजराती हैं और उनकी मातृभाषा गुजराती है। वे उर्दू बोलने में भी असमर्थ हैं। सरकारी आंकड़ों के अनुसार केवल १% लोग उर्दू जानने वाले हैं। इनमें हिन्दू और सिक्ख भी सम्मिलित हैं, जिन्हें सरकारी पक्षपातपूर्ण तथा हिन्दू-विरोधिनी नीति के कारण न्यायालय और सरकारी कार्य्यालयों में विवश होकर उर्दू अपनानी पड़ती है। घर में जाकर तो सर सिकन्दर भी पञ्जाबी बोलते थे। मैं जानना चाहता हूँ कि यदि ८ करोड़ मुसलमानों की भाषा उर्दू है, प्रान्तीय भाषाएँ उनकी मातृभाषायें नहीं हैं तो क्यों नहीं मुसलमान उर्दू के सिनेमा गृहों में जाते ? क्या यह सत्य नहीं कि सिनेमा गृहों में बैठा हुआ मुसलमान 'प्रभात' 'न्यू थियेटरज' और 'बाम्बे टाकीज' में शान्ता-आप्टे, काननबाला और देविकारानी के गीतों को उसी प्रकार समझता है जिस प्रकार उस के पड़ोस में बैठा हिन्दू। वहाँ वह 'उर्दू' की रट नहीं लगाता। वहाँ तो वह मस्त हुआ सिर

हिलाता है, चुटकियां लेता है और वाह ! वाह ! की ध्वनि गुंजाता है। सिनेमा से उठकर रिकार्ड वाले की दुकान से रिकार्ड लाकर बार-बार बजाता है और उसी आनन्द को फिर से ताज़ा करता है। मैंने पंजाब तक के मुसलमानों को गाते सुना—'इस मन उपवन में मधुर-मधुर मुरली बाजे।' यह सब क्यों ? यहीं साम्प्रदायिकता की ऐनक उतरी हुई है। क्या ये बातें इस ओर संकेत नहीं करतीं कि हिन्दू और मुसलमान की भाषा एक है। क्या मद्रास का मुसलमान मद्रासी भाषा के सिनेमा में न जाकर किसी ऐसे सिनेमा में जाता है जहां उर्दू में बोला जाता है ? क्या गुजराती भोरा उर्दू में व्यवहार करता है ? यह तो 'बंगीय कृषक प्रजा पार्टी, इस नाम से ही स्पष्ट है। फिर समझ नहीं आता कि ८ करोड़ मुसलमानों की भाषा उर्दू कैसे कही जाती है ?

राष्ट्रीयता की मांग

सज्जनो ! यह युग राष्ट्रीयता का है। इस युग में कोई भी राष्ट्र राष्ट्रीयता के बिना नहीं जी सकता। राष्ट्रीयता के बल पर मृत राष्ट्र भी उठकर जीवित राष्ट्रों की श्रेणी में खड़े हो गये हैं। हमारे देखते ही देखते १५ वर्ष के भीतर रोम, मिश्र और टर्की जिन्हें मृत समझा जाता था, आज जीवन और जागृति से ओत-प्रोत हैं। जर्मनी, जिसे नष्ट कर डाला गया था आज एक-एक करके अपने पुराने बदले चुका रहा है। यह अब किस का प्रताप है ? उस राष्ट्रीयता का, जो भिन्न २ धर्मों, भाषाओं, जाति-उपजातियों और संस्कृतियों में बंटे देश को माला की भाँति एक कर देती है। टर्की को ही लीजिये। आज टर्की में 'तुर्क तुर्कों के

लिये हैं' यह नारा गूंज उठा है। उन्होंने अरबी के ५ लाख शब्द निकाल कर बाहर कर दिये हैं। शताब्दियों से चले आ रहे 'कुस्तुन्तुनिया' नाम को बदल कर तुर्की नाम 'इस्ताम्बूल' रख दिया है। स्वयं कमालपाशा ने 'मुस्तफ़ा' हटाकर अपने साथ 'अतातुर्क' का प्रयोग किया। वे भी मुसलमान हैं। उनके लिये भी अरबी क़ुरान ए-पाक की भाषा है। परन्तु वे एक क़दम आगे हैं। वे राष्ट्रीय हैं। अतः उनके लिये तुर्की, अरबी से बढ़ कर है। आज ईरान में राष्ट्रीयता का बोलबाला है। ईरानी लोग भी अरबी को धता बता कर ईरानी को अपना रहे हैं। वे व्यंगचित्र बनाते हैं। एक ऊँट अरबी पुस्तकों से लदा खड़ा है। उसे एक अरब खींच रहा है। पीछे एक इरानी चाबुक मार रहा है। नीचे शब्द लिखे हैं "अरबी अरब को जाय ईरान ईरानी के लिये है।" वे भी इस्लाम को मानते हैं और उनके लिये भी अरबी ईश्वरीय भाषा है, परन्तु वे ईरानी हैं इस लिये ईरानी उनके लिये अरब से बढ़कर है और ईरानी, अरबी से अधिक प्यारी है। क्या भारत के मुसलमान नहीं कह सकते—"अरबी अरब को जाये, ईरानी ईरान की राह ले, अंगरेज़ी अंगरेज़ों का दामन पकड़े, हिन्द केवल हिन्दी के लिये है।"

हिन्दी का स्वरूप

प्रश्न होता है कि यदि इस देश की भाषा हिन्दी है तो उसका स्वरूप क्या है? जिसकी एकमात्र जननी संस्कृत है, प्राकृत से रूपान्तरित होने के कारण जिसे स्वभावतः संस्कृत का उत्तराधिकार प्राप्त है, जिसे १२ करोड़ भारतवासियों की मातृभाषा होने का गौरव है, २३ करोड़ व्यक्ति जिसे समझ सकते हैं और

सबसे बढ़कर संस्कृत की प्रिय पुत्री होने से भारत की सभी प्रान्तीय भाषाओं के जो समीपतम है, उस भाषा का नाम 'हिंदी' है। उसे ही ४० करोड़ भारतीयों की राष्ट्रभाषा होने का अभिमान है। वही एकमात्र बंगाली, गुजराती, मराठी, कनाड़ी, मलयाली, तेल्गू, तामिल, पंजाबी और सिंधी बहिनों की हृदय-देवी बन सकती है। यही एक मात्र उनकी बांह में बांह डालकर उनका आलिंगन कर सकती है। परदेशी वा अपरिचित को उसको स्पर्श करने का भी अधिकार नहीं, हृदयासन पर बैठाना तो दूर रहा। भारत की सभी प्रांतीय भाषायें संस्कृत के कितनी समीप हैं, यह निम्न श्लोक से स्पष्ट हो जायगा।

(क) संस्कृत—स्थितिं नो रे दध्या क्षणमपि मदान्धेक्षणसखे
गजश्रेणीनाथ त्यमिह जटिलायां वन भुवि।
असौ कुम्भिभ्रान्त्या खरनखरविद्रावितमहा।
गुरुग्रावग्रामा स्वपिति गिरिगर्भे हरिपतिः॥

इसे इसी छन्द में 'मराठी' में किया जाता है। समानता देखिये—

मराठी—गजालिश्रेष्ठा या निबिड़तर कान्तार जठरीं।
मदांधाक्षा मित्रा क्षणभरिहि वास्तव्य न करी।
नखाग्राणां ये थे गुरुतर शिला भेदुनि करी।
भ्रगारो आहे गिरि कुहरिं हा निद्रित हरि॥

(ख) संस्कृत—दानंभोगो नाशस्तिस्त्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति॥

इसे 'तैल्गू' में किया जाता है। समानता देखिये—

तेल्गू—

दानमु भोगमु नाशमु हूनिकतो मुड्डूगतलू भुवि धनमुनकम् ।
दानमु भोगमुनिरूगने दीननि धनमुतकग ति तृतीयमे पोसगुन॥

(ग) संस्कृत—

बुभुक्षित: किं न करोति पापं, क्षीणा जना निष्करुणा भवन्ति ।
आख्याहि भद्रे ! प्रियदर्शनस्य, न गंगदत्त: पुनरेति कूपम् ॥
इसे 'मुलतानी' में किया जाता है । समानता देखिये—

मुलतानी—

भुक्खे करेंदे क्या नहीं हे पाप, हीण जने निर्दयी वे दिन बण।
आखीं री भल्ली प्रियदर्शनणों, न गंगदत्त: वल्ल आसी खूंने ॥

(घ) कनाडी—रवि आकाश के भूषणं, रजनिगं चन्द्रं महाभूषणम्।
कुअरं बंश के भूषणं, सतिगे पतिव्रत्यये भूषणम् ।
हवि यज्ञादिके भूषणं,सरिस् अम्भोजाहगड़ भूषणम्।
कवि आस्थान के भूषणं, हरहर: श्रीचन्न सोमेश्वर: ।

(ङ) तामिल-श्रीरामर मिथुलिमा नगर चेण्ड्र शिवधनुषै अतिशीघ्रं
वडथु जनकपत्रि सीता देव्यै विवाहं चैदु कोण्डार ।
प्रजैकल दम्पति कुलै: अंगिहार शैदनत् ।

(च) बंगाल—सुजलां सुफलां मलयजशीतलां मातरम् । बन्दे मातरम् ।

(छ) गुजराती—करी खूने खूने जगत निरख्युं नेत्र सद् ये ।
जहा व्याधि मृत्यु त्रिविध बडले जीअमरतां ।

अणे बीजा जीवो उपर निभतां जीव निरख्यां।
घुम्यां शांति अर्थे वन वन तपो तीव्र तप्यां ।।

पंजाबी–इक ओंकार नाम सत् नाम करता पुरुष निरभौ निर-
वैर अकालमूरत अयोनि सोगं गुरपरसाद। जप-
आदि सच युगादि सच है बी सच नानक हो सी
बी सच।

इन उद्धरणों को पढ़कर यह प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता कि सभी प्रांतीय भाषाओं में सर्वनिष्ठत्व संस्कृत है। प्रांतीय भाषाओं में 'संस्कृत' शब्दों की कितनी प्रधानता है इसे दर्शाने के लिये 'मुलतानी' का यहां वर्णन किया जाता है—

संस्कृत	मुल्तानी	संस्कृत	मुलतानी	संस्कृत	मुल्तानी
शिर	सिर	कक्ष	कछ	सन्देश	सन्देश
प्रभात	प्रभात	केश	केश	दुग्ध	डुद्ध
वेला	वेला	कुक्कुट	कुक्कुड़	विश्वास	विस्वास
जल	जल	नाग	नांग	भ्रम	भरम
कल्याण	कल्याण	जंघा	जंघ	ब्राह्मण	बाम्भण
क्षीर	खीर	अक्षि	अक्ख	मलमूत्र	मलमुत्र
अम्बा	अम्माँ	सज्जन	सज्जण	काष्ठ	काठ
वाह	वा	लक्षण	लच्छण	व्रज	वञ्ज
पत्र	पत्र	अमावस्या	मस्या	पूर्णिमा	पूर्णमाँ
अन्नजल	अन्नजल	अक्षर	अक्खर	त्रय	त्रय
पञ्च	पञ्ज	सप्त	सत्त	चन्द्र	चन्द्र

ये थोड़े से शब्द दिखाये गये हैं। मराठी, गुजराती, कनाडी, तामिल और बंगाल में तो ये ५० से ७५% तक हैं। उनमें संस्कृत की विभक्तियाँ भी जैसी की तैसी रह गई हैं। यथा मुलतानी में— धीजीवी, पुत्रजीवी आदि प्रयुक्त होता है। हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाते समय हमें इस बात का ध्यान रखना होगा कि हमारी भाषा प्रांतोय भाषा के समीप रहे। ऐसा करना कठिन नहीं, क्योंकि दोनों की माता एक ही 'संस्कृत' है! इससे जहाँ प्राँतीय लोगों को हिन्दी सीखने में सुविधा होगी वहाँ नवीन शब्द आने से हिंदी के कोष की भी अभिवृद्धि होगी। मुझे दुःख से लिखना पड़ता है कि 'हिन्दुस्तानी' के प्रचारकों ने इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। उन्होंने हिन्दी को मद्रासी जनता के समीप लाने की अपेक्षा अरब और ईरान के निकट ला दिया है। मद्रास प्रान्त के लिये तय्यार की गई 'हिन्दुस्तानी' की प्रथम पुस्तक को देख कर यह सन्देह होने लगता है कि यह भारत के लिये लिखी गई है या ईरान के विद्यार्थियों के लिए! पुस्तक को देखते ही यह प्रभाव पड़ता है कि लेखक को हिन्दी से वैसी ही विरक्ति हो गई है जैसी भर्तृहरी को स्त्रियों से हुई थी। पंक्तिभ्रष्ट होकर आये हिन्दी शब्दों की भी गर्दन मसोस दी गई है। यथा 'अमृत' को अमरत और 'यत्न' को 'जतन' आदि। भाषा के साहित्य को परिवर्तित करने के लिये उसकी पृष्ठ-पीठिका भी बदल दी गई है। उन्हें राम सीता कृष्ण और रुक्मिणी के नाम स्मरण कराने की अपेक्षा असद, सईरा और असलम के नाम याद कराये गये हैं। लिपि ही देव-नागरी है अन्यथा उसे उर्दू कहने में कोई अत्युक्ति नहीं। सो इस प्रकार यह तालिका से स्पष्ट हो जायगा—

हिन्दुस्तानी	कनाड़ी	तेल्गू	तामिल	मलयालम
(१) उस्ताद	उपाध्याय अय्यनवरु	अध्यापकलू	उपाध्यायम् उपात्याचर	उपात्यारे
(२) दफ्तर	कार्यालय	कार्यालय	कार्यालयम्	कार्यालयांते
(३) तर्जुमा	अनुवाद	अनुवाद	अनुवादम्	अनुवादम्
(४) ज़बान	वाणी	भाषा	वाणी भाषा	वाणी भाषा
(५) दमश्क	पाठ	पाठमुलू	पाडम्	पाडम्
(६) हरूफ़	अक्षर	अक्षरम्	अक्षरम्	अक्षरम्
(७) मदरसा	पाठशाला	पाठशाला	पाडशाले	पाडशाला
(८) मर्ज़ रोग,	व्याधि	व्याधिलु	व्याधि रोगम्	नोवु
(९) जन्नत	मोक्ष	मोक्षमु	मोक्षम्	मोक्षम्
(१०) रब	ईश्वरन	ईश्वरन्	भगवन् ईश्वरन्	देव ईश्वरन्
(११) कसरत	व्यायाम	व्यायाम	शरीराभ्यास देहि पैरचि	कसरते
(१२) मज़हब	सम्प्रदाय मत	सम्प्रदायमु मतमु	मतम्	मदम्

इस पर किसी प्रकार की टीका-टिप्पणी करने की आवश्यकता नहीं है। शब्द अपनी कथा आप कहते हैं। जिस भाषा की प्रथम पुस्तक की यह दशा हो तब अगली तो सीधा अरब में छोड़ कर ही दम लेगी। आश्चर्य है इस पर भी मौलाना अब्बुल कलाम आज़ाद साम्प्रदायिक चश्मा लगा कर कहते हैं—"यही भाषा है जिसे सर्वप्रांतीय भाषा होने का अधिकार प्राप्त है।" यदि इसे ही

राष्ट्र-भाषा बनने का अधिकार है, तो मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि प्रत्येक सच्चे राष्ट्रीय व्यक्ति का यह राष्ट्र-धर्म है कि वह ऐसी राष्ट्रभाषा का घोर विरोध करे। मैं राष्ट्रीय हूँ। हिन्दुस्तानी के विरोधी राष्ट्रीय हैं, मौलाना आज़ाद के दिल पर नहीं, अपितु अपने दिल की कसौटी पर। मैं डंके की चोट कहता हूँ—हिन्दी वह भाषा है जो मध्यदेश अर्थात् संयुक्त प्रान्त, बिहार, महाकोशल, राजस्थान, दिल्ली तथा पूर्वीय पंजाब के करोड़ों लोगों की मातृ-भाषा है और जिसे संस्कृत का उत्तराधिकार प्राप्त हुआ है। वही इस देश की राष्ट्रभाषा बनने की सच्ची अधिकारिणी है। उसके बीच किसी विदेशी को चूँ भी करने का अधिकार नहीं है। जब तुर्की और ईरानी के सामने अरबी मुँह सीकर बैठती है तो हिन्दी के सन्मुख बोलने वाली यह उर्दू होती कौन है? संसार के किसी भी देश में बहुमत ने अल्पमत के लिये अपनी भाषा नहीं बदली फिर भारत में एक सहस्र वर्ष से चली आ रही हमारी परम-पावन मातृ भाषा को विदेशी शब्दों से अपवित्र करने का ये देशद्रोही साहस ही कैसे करते हैं? अरबी और ईरानी को पनपने के लिये अन्य देश बहुत हैं, किन्तु संस्कृत और हिन्दी का तो इस देश को छोड़ कर अन्य कोई सहारा ही नहीं है। यदि वह यहाँ ही न रही, तो फिर कहीं न रही। उसे खो कर प्राप्त की हुई स्वतन्त्रता भी परतन्त्रता है, स्वराज्य भी परराज्य है। उसे नष्ट कर भारत भारत नहीं, गारत बन जायेगा। मैं कहता हूँ जब तक एक भी स्वाभिमानी हिन्दू भारत में जीवित है वह इस अपमान को सह नहीं सकता। देह में रक्त की बिंदु भी शेष रहते इस निशाचरी से हम जूझेंगे और हमें आशा है हम अवश्य विजयी होंगे।

हिंदी ही क्यों ?

हिन्दी और उर्दू की प्रतियोगिता में हिन्दी ही क्यों राष्ट्रभाषा बनने के योग्य है, इसमें निम्न युक्तियां दी जा सकतीं हैं—

(क) उर्दू विदेशी है और हिन्दी स्वदेशी। कोई कह सकता है कि उर्दू तो भारत में ही उत्पन्न हुई है. फिर विदेशी कैसे ? जिस प्रकार उन कम्पनियों और कारखानों को अपनाना देश के लिये घातक है जिनकी पूंजी विदेशों में लगी है, उसी प्रकार उन भाषाओं को अपनाना भी देशद्रोह है जिनका आधार विदेश है। हिन्दी का आधार (संस्कृत) भारतीय है और उर्दू का आधार (अरबी-फारसी) अ-भारतीय है। परिणामतः उर्दू को अपनाने से हमारी शक्ति विदेशी भाषाओं के उत्थान में लगेगी और हिन्दी को अपनाने से संस्कृत का अभ्युदय होगा।

(ख) उर्दू में विजेतापन की बू है और गुलामों से अपनाई हुई की गन्ध है। इसके विपरीत हिन्दी में विजयी और स्वतन्त्र होने की अपरिमेय लालसा है।

(ग) उर्दू समझने वालों की संख्या अत्यल्प है और हिन्दी समझने वाले करोड़ों हैं। १२ करोड़ की यह मातृभाषा है। ११ करोड़ इसे समझ सकते हैं। इस प्रकार प्रति पैंतीस मनुष्यों में से तेईस हिन्दी को समझने वाले हैं और उर्दू को समझने वाले सौ में एक, पचास में आधे, पैंतीस में स्वयं गणना कर लीजिये।

(घ) भारत की सभी भाषाओं का आदिस्रोत संस्कृत है। सरकारी आँकड़ों के अनुसार प्रति सौ में इक्कानवें व्यक्ति ऐसे हैं जो उन भाषाओं को बोलते हैं जिनके कोष का समन्वय संस्कृत कोष से हो सकता है। अतः राष्ट्रभाषा वही हो सकती है, जो

संस्कृत के अधिकतम निकट हो। यह स्थान हिन्दी को ही प्राप्त है, उर्दू को नहीं।

(ङ) भारत का कोरिया, चीन, जापान, तिब्बत, बर्मा, स्याम, हिन्द चीन, नैपाल, बाली और लङ्का के साथ साँस्कृतिक सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध धर्म के आधार पर है और बौद्ध धर्म तथा हिन्दू धर्म के सभी ग्रन्थ संस्कृत तथा पाली में हैं। यदि भारत को इन देशों के साथ सम्बन्ध रखना है, जैसा कि मैं समझता हूँ रखना है, तो भारत की भाषा वही होनी चाहियें जो उनके अर्थात् संस्कृत के अधिकाधिक समीप हो। यह निश्चय हिन्दी ही हो सकती है।

(च) इस देश में सहस्रों वर्षों से एक साथ रहते हुए यहाँ के निवासियों ने एक साहित्य, एक इतिहास, एक संस्कृति और एक कथासागर को विकसित किया। वह हिन्दू और मुसलमान दोनों के लिये एक सा है, क्योंकि दोनों के पूर्वज एक हैं। इस देश की राष्ट्रभाषा में उन उपाख्यानों और साहित्य का वर्णन होना आवश्यक है। इसी से भारतीय संस्कृति अमर रह सकती है। उनका वर्णन हिन्दी में ही है, उर्दू में नहीं। उर्दू वाले तो भारत की 'कोयल' हटा कर चमनिस्तान की 'बुलबुल' सिरों पर बिठा रहे हैं। वे 'बाल्मीकि' और 'व्यास' से मुँह मोड़ कर 'सुकरात' और 'अफ़लातून' के गीत गा रहे हैं। वे 'भीम' न कह कर 'रुस्तम' बोलते हैं। वे सौंदर्य की प्रतिमा 'कमल' से चिढ़ कर रेगिस्तान की 'खजूर' अपना रहे हैं। उर्दू का प्रवाह

केवल बहिर्मुख ही नहीं, उसका उद्गम भी विदेशी बन रहा है। जिसकी आत्मा और दृष्टि ही अपनी नहीं वह कैसे राष्ट्रभाषा बन सकेगी, यह आप स्वयमेव विचार लें। प्रान्तीय भाषाओं के संरक्षण के साथ २ राष्ट्रभाषा तो हिन्दी ही होगी। उर्दू किसी भी प्रान्त की भाषा नहीं, किसी जाति विशेष की भाषा नहीं. तथापि यदि मुसलमानों को उर्दू के लिये आग्रह ही हो तो वे प्रसन्नतापूर्वक पढ़ सकते हैं। उनके लिये ७५% हिन्दुओं पर उर्दू थोपना अन्याय ही नहीं. भयंकर पाप है। यदि मुसलमानों को हिन्दुओं से सम्पर्क रखना है तो उन्हें विवश होकर राष्ट्रभाषा हिन्दी को सीखना ही पड़ेगा।

(छ) हिन्दी उर्दू की अपेक्षा अधिक सरस, अधिक वैज्ञानिक तथा अधिक परिपूर्ण भाषा है।

(ज) हिन्दी प्राचीन है और उर्दू नवीन है। हिन्दी का काल ईसा की दूसरी-तीसरी शताब्दी तक जाता है और उर्दू ढाई सौ वर्ष से पुरानी नहीं है।

(झ) हिन्दी में सब प्रकार का साहित्य है। हिन्दी की जननी संस्कृत होने से इसे अपरिमेय कोष और शब्द-भण्डार उत्तराधिकार में प्राप्त हुआ है, दूसरी ओर उर्दू में कुछ विशेष प्रकार का साहित्य ही पाया जाता है।

(ञ) भारत से बाहर जहाँ-जहाँ भी भारतीय लोग आवासित हैं, उनकी बोलचाल की भाषा हिन्दी है। उनसे सम्बन्ध बनाये रखने के लिये हिन्दी ही राष्ट्रभाषा बनने के योग्य है।

(ट) इन सब से बढ़ कर संसार का यह नियम है कि बहुमत की

भाषा ही राष्ट्रभाषा होती है। हमारे देश में बहुमत की भाषा हिन्दी है। अतः यही राष्ट्रभाषा कहलाने के योग्य है।

हृदय की आवश्यकता

प्रश्न यह है कि हम हिन्दी को इस पद तक पहुँचायें कैसे ? संसार में जितने महान् कार्य आज तक हुए हैं, वे सब हृदय की धधकती आग के साक्षात् स्वरूप हैं। जब हृदय बोलने लगता है तो बड़े-बड़े मस्तिष्कों पर ताले ठुक जाते हैं। हृदय का यही चमत्कार है कि जिन वस्तुओं को हम थोथा कह कर टालना चाहते हैं वही इतिहास के पन्नों पर जमकर आसन लगाये बैठी हैं, क्योंकि वे किन्हीं हृदयों की धड़कन के साक्षात् स्वरूप हैं। जब तक आन्दोलनों में हृदय की धड़कन रहती है, तब तक उनमें जीवन रहता है और वे आग की भाँति फैलते हैं। वही बात भाषाओं के विषय में हैं। आज जो भाषायें जीवित हैं, उनकी तह में यही नियम काम कर रहा है।

भारत के साथ बर्मा का देश है। इस देश में फ्रैंच लोगों की संख्या अत्यल्प है। १% भी फ्रैंच लोग बर्मा में नहीं हैं। फिर भी बर्मा का कोई नगर ऐसा नहीं जहाँ का डाकस्वामी और डाकिया फ्रैंच न जानता हो। ऐसा क्यों है ? उत्तर सीधा है। फ्रैंच भाषा में लिखा एक पत्र एक बार बर्मी सरकार ने 'अपठित-पत्र कार्यालय' (D. L. O) में भेज दिया। फ्रैंच हृदय इस अपमान को न सह सका। प्रत्येक फ्रैंच ने दृढ़ व्रत धारण किया कि हम अपना सम्पूर्ण पत्र-व्यवहार फ्रैंच में ही करेंगे। अगले ही दिन फ्रैंच पत्रों से पेटियाँ भरने लगीं। बर्मी सरकार परेशान हो गई। अन्ततः सरकार झुकी और

निश्चय हुआ कि बर्मा के प्रत्येक नगर में ऐसे लोग डाकिये और डाक-स्वामी रक्खे जायें जो फ्रैंच भी जानते हों। एक वे भी हैं और एक हम भी हैं। नगण्य फ्रैंच लोगों ने बर्मी सरकार को झुका लिया और हम २३ करोड़ की भाषा वाले होते हुए भी नित्यप्रति अपनी आँखों के सम्मुख अपनी भाषा का अपमान देखते हुए भी चुप हैं। क्यों? हम में संगठन नहीं। संगठन क्यों नहीं? उत्तर मिलेगा, हृदय नहीं।

'सिनफ़ीन' आन्दोलन के प्रवर्तक आयरिश देशभक्तों ने जब अपनी भाषा के आदर का प्रश्न उठाया था उस समय उसे बोलने वालों की संख्या ६% थी। परन्तु उनके हृदय में बल था और आत्मा में दृढ़ विश्वास। इसी समय आयर्लैंड में एक विश्व-विद्यालय खुला। उसमें अंगरेज़ी के उपाध्याय का वेतन आयरिश के उपाध्याय से दुगुना था। यह देख आयरिश देशभक्तों का रुधिर खौल उठा। उन्होंने निश्चय किया कि जब तक हमारी भाषा का उचित सम्मान न किया जायेगा तब तक एक भी विद्यार्थी पढ़ने न जायेगा। विद्यालय खुला, उपाध्याय आये, चपरासी नियत वेष धारण किये पंक्ति में खड़े हुए, उपस्थिति-पंजिका खुली, कलम ने स्याही में स्नान भी किया, परन्तु जिसकी उपस्थिति ली जाती ऐसा एक भी यहाँ उपस्थित न था। एक-एक मिनट करके घण्टा बीता, घण्टों ने मिल-मिलकर दिन बनाया, दिन जुड़-जुड़ कर सप्ताह हुआ, सप्ताहों का मास बना और इस प्रकार तीन मास बीत गये। एक भी लड़का पढ़ने न गया। निदान वह ब्रिटिश सरकार जिसके राज्य में शताब्दियों से सूर्यास्त नहीं हुआ, उन विद्यार्थियों की माँग के सम्मुख झुकी और दोनों उपाध्यायों का वेतन समान करना पड़ा। एक वे भी हैं और एक हम भी हैं जो प्रतिदिन अंगरेज़ी

और उर्दू के सम्मुख अपनी भाषा अपमान सहते चले जाते हैं और उसके उत्थानार्थ अंगुली हिलाना भी पाप समझते हैं। कहाँ तो आयरिश नेता डी वलेरा, जो अंगरेज़ी गवर्नर से अंगरेज़ी में बात करने से इन्कार कर देता है और कहाँ हमारे नेता, जो अंगरेज़ी बोलने से लज्जित होना तो दूर रहा अपितु उसमें गर्व मानते हैं। दोनों हृदयों में कितना भेद है!

दक्षिण अफ्रीका में बोर (डच) लोगों की पर्याप्त संख्या है। जब अंगरेज़ों ने इस पर अधिकार कर लिया तो बोर नेता जनरल बोथा, ऐडवर्ड सप्तम से मिलने लण्डन गया। वह जाकर महल के बाहर चुपचाप खड़ा हो गया। द्वारपाल ने अंग्रेज़ीमें अनेक प्रश्न पूछे, परन्तु बोथा ने कोई उत्तर न दिया। अन्तत: ऐडवर्ड स्वयं आया। उसने देखा यह तो बोथा खड़ा है। यह तो अंगरेज़ी बहुत अच्छी जानता है, फिर बोलता क्यों नहीं? उसे ध्यान आया कि जब पराधीन जाति के नेता को अपनी भाषा से इतना प्रेम है फिर मैं तो स्वाधीन जाति का सम्राट् हूँ, मैं अपनी भाषा कैसे छोड़ सकता हूँ। ऐडवर्ड और बोथा दोनों ने एक दूसरे की भाषा को जानते हुए भी अपनी २ भाषा के सम्मानार्थ दुभाषिये द्वारा बात करना श्रेयस्कर समझा। कहाँ तो सेनापति बोथा जो राजा के घर जाकर भी अपनी भाषा नहीं छोड़ता और कहाँ हम जो घर में ही अपनी भाषा की चिता जला रहे हैं!

इसी दक्षिण अफ्रीका में डच लड़कियों का एक विद्यालय है। जार्ज पंचम की रजत-जयन्ती के उपलक्ष्य में लड़कियों को सरकार की ओर से चीनी बर्तन भेंट में दिये गये। उन पर अंगरेज़ी तो लिखी थी पर डच न थी। यह देख लड़कियों ने बर्तन पृथ्वी पर

पटक मारे। जब आचार्य्या ने कहा तुमने राजा का अपमान किया है तो लड़कियों ने बस यही उत्तर दिया—"ये हमारी भुजाएँ हैं काट दो, यह छाती है उड़ा दो। किन्तु बाहुएँ कट जाने पर, गर्दन टूट जाने पर और गोली खा लेने पर भी हमारा भाषा-प्रेम हम से छूट नहीं सकता।" कहाँ तो वे छोटी २ बालिकायें जो उपहार के बर्तनों पर भी विदेशी भाषा सहन नहीं करतीं और कहाँ हम जिनके सिक्कों, टिकटों और घर के लेखे में भी राष्ट्रभाषा का स्थान नहीं है।

कुछ समय हुआ 'अल्सेस' 'लारेन' के फ्रैंच प्रदेश जर्मनी ने जीत लिये। जर्मन लोगों ने वहाँ से फ्रैंच भाषा का समूलोन्मूलन करने का निश्चय कर लिया। सरकारी आज्ञायें केवल जर्मन में निकलतीं। दुकानदारों को आज्ञा दी गई कि वे अपनी दुकानों का नाम जर्मन में लिखें। ऐसी विकट परिस्थिति में एक दिन जर्मनी की रानी कैथराईन एक विद्यालय का निरीक्षण करने गई। वहाँ वह एक दस वर्षीय बालिका से प्रसन्न हो गई। रानी ने बालिका से कहा—"मैं तुम से बहुत प्रसन्न हूँ, तुम जो चाहो सो माँगो।" बालिका ने रानी से सम्बोधन कर कहा—"रानी! यदि तुम मुझ से सचमुच प्रसन्न हुई हो तो मेरी भाषा मुझे लौटा दो!!" मैं चाहती हूँ कि मेरे देश में भी ऐसी बालिकायें उत्पन्न हों जो संसारिक सुखों को छोड़ अपनी भाषा का वरदान माँगें। मेरे देश की बालिकाओं में भी वही भावना जागे जो उस फ्रैंच बालिका में जगी थी।

कार्लाईल ने एक स्थान पर लिखा है—"यदि अंग्रेजी और अंग्रेज़ी साम्राज्य में विकल्प हो तो मैं अंग्रेज़ी को ग्रहण करूँगा।

और अंग्रेज़ी साम्राज्य को ठुकरा दूँगा।" कहाँ तो वह भावना और कहाँ हमारे देशवासी जो हिन्दी को ठुकरा कर उर्दू और अंग्रेज़ी की चाटुकारी करना पसन्द करते हैं। यह क्यों? हम में वह हृदय ही नहीं जो दूसरों में है। हम तो अंग्रेज़ और मुसलमान का मुँह देखते ही अपनी भाषा भूल जाते हैं। उसे प्रसन्न करने के लिये न जानते हुए भी अंग्रेज़ी और उर्दू बोलने में अभिमान मानते हैं। दूसरों को प्रसन्न रखना बुरा नहीं, परन्तु अपने को दीन हीन समझना पाप है। यदि हम में तनिक भी स्वाभिमान होता तो अपनी माँ की दयनीय दशा देखते हुए भी विमाताओं के पीछे मुग्ध हुए न दौड़ते।

माँ की दशा निहारो

आज हमारी माँ खड़ी है। उसकी जिह्वा कट चुकी है। मुँह से रुधिर-धारा बह रही है। आँखों से लहू टपक रहा है! भक्त आते हैं। माँ भक्तों से पूछती है—पुत्रो! क्या मेरी इच्छा पूर्ण करोगे?' भक्त सिर हिलाते हैं, हाँ। माँ पूछती है मुझे क्या दोगे? भक्त कहते हैं श्रद्धा के दो-चार सुन्दर फूल। माँ दुःख से सिर नीचा कर लेती है और लहू में पलकें डुबो कर एक २ आँख से लहू की एक बून्द गिरा कर पूछती है—प्यारो! क्या मेरी रक्षा में तुम बस यही दे सकते हो? सावरकर आगे बढ़कर कहता है 'माँ, मेरा सिर प्रस्तुत है।' वही चित्र फिर आता है। एक शिशु और दो व्यक्ति। एक भारत और दो भाषाएँ। हिन्दी और उर्दू। सावरकर और जिन्ना। माँ आती है और बच्चे का हाथ सावरकर के हाथ में देकर चली जाती है।

[यह भाषण श्री पं० चन्द्रगुप्त जी वेदालंकार ने छपरा, बिहार प्रान्त में दिया था।]

चेतावनी

बन्धुओ ! महाभारत में यक्ष के प्रश्न का उत्तर देते हुए युधिष्ठिर ने कहा—"अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम्। शेषाः स्थविरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्।" दिन-प्रति-दिन लोग यमलोक जा रहे हैं। फिर भी बचे हुए लोग स्थिरता की कामना कर रहे हैं। मानव जाति के प्रागैतिहासिक काल में कौन-कौन से साम्राज्य बन कर निःशेष हो गये हैं, मुझे नहीं मालूम। हम इतना ही जानते हैं कि पुरातत्व की गवेषणा से जाने गये असीरियन, बैबिलानियन और मिस्री साम्राज्य आज नहीं है। ईरानी और ग्रीक साम्राज्यों के केवल चिह्न ही अवशिष्ट हैं।

रोमन सम्राटों, ओटमान तुर्कों, कुबलेईखाँ तथा नादिरशाह के साम्राज्यों की कथा अब केवल इतिहास के पृष्ठों में अंकित है। भारत में मौर्य्यों, गुप्तों आँध्रों और मरहट्टों के साम्राज्य अब 'इतिहास' बन चुके हैं। विजयनगर का साम्राज्य आज भूले हुए साम्राज्यों (A forgotten empire) में गिना जाता है। योरुप में स्पेन का साम्राज्य आज कहाँ है? नैपोलियन का साम्राज्य कहाँ गया? ज़ार साम्राज्य आज 'सोवियत प्रजातन्त्र' बन चुका है और चीनी साम्राज्य महायुद्ध की ज्वाला जलने से पूर्व ही एक प्रजातन्त्र बन चुका था। कैसर का साम्राज्य-स्वप्न हवा हो चुका है। फिर भी हिटलर 'नये साम्राज्य' का स्वप्न देख रहा है और उसे चरितार्थ करने के लिये वर्त्तमान विश्वयुद्ध आरम्भ किया है। युधिष्ठिर के कथन के अनुसार यद्यपि मनुष्य प्रतिदिन सहस्रों लोगों को मृत्यु के मुख में जाते हुए देखता है, फिर भी यही समझता है कि वह कभी नहीं मरेगा। यह जानते हुए भी कि इतने बड़े-बड़े साम्राज्य मृत्यु के सामने नहीं टिक सके, नाज़ी लोग अपने द्वारा स्थापित होने वाले साम्राज्य को शाश्वत समझ रहे हैं। वे जानते हैं कि एक दिन दैवीय चोट से हम भी गिरेंगे, परन्तु वह दिन आने से पूर्व अन्य साम्राज्यवादी राष्ट्रों की तरह मानव-शोषण से क्यों चूकें? यह भावना है जो आज नाज़ी लोगों में काम कर रही है। राष्ट्रों के इस उत्थान और पतन में ही इतिहास का मर्म छिपा है। गत महायुद्ध में फ्रांस ने जर्मनी को परास्त किया था। इस बार भी उनकी धारणा ऐसी ही थी। फ्रांसीसियों को बताया गया था कि उनकी आकाश-सेना किसी से कमज़ोर नहीं है।

इन्हें विश्वास दिलाया गया था कि उनके पास जितने टैंक हैं उतने और किसी के पास नहीं हैं। उन्हें अपने सेनापति 'गैमलिन' पर नाज़ था। 'मैजिनो लाईन' को वे अटूट समझ रहे थे। गैमलिन की सेना इसी के पीछे पड़ी थी। उसे बन्दूक उठाने का अवसर भी कभी ही मिलता था, क्योंकि इसके पीछे पड़े हुए वे अपने को सुरक्षित समझ रहे थे। इसी समय जब फ्रैंच सैनिकों में सुस्ती के भाव भर रहे थे, जर्मनी ने बेल्जियम में से हो कर सिडन के रास्ते फ्रांस पर आक्रमण किया। 'मैजिनो लाईन' धरी रह गई। दस दिन में जर्मन सेनाओं ने पैरिस पर अधिकार कर लिया। स्थिति नाज़ुक देख कर मार्शल पेताँ की नई सरकार ने आत्म-समर्पण कर दिया और हिटलर द्वारा बताई गई शर्तों पर संधि कर ली। फ्रांस की पराजय से हज़ारों के दिलों को चोट लगी, क्योंकि स्वतन्त्रता के समर्थक होने से लोगों की सहानुभूति फ्राँस के साथ थी। परन्तु प्रश्न तो यह है कि उसका इतना शीघ्र पतन हुआ क्यों? मार्शल पेताँ ने कहा—"We had too few children, too few ammuniton and too few allies" अर्थात् हमारे पास सैनिक कम थे, साधन कम थे और हमारे मित्र कम थे। परन्तु फिर प्रश्न उठता है कि इस कमी का कारण क्या था? विचारने से पता चलता है कि विगत महायुद्ध में फ्रांस की जो विजय हुई थी उससे फ्रांस निवासी वीरता के आदर्श को भूल कर विलासिता की ओर झुक गये थे। नैपोलियन का जन्मदाता फ्रांस, अब वीरों की जननी न रह कर विलासिता का केन्द्र बन गया था। विजय और वैभव की मस्ती ने फ्रैंच जाति को जर्जरित कर दिया था। अब वह केवल आघात की प्रतीक्षा कर रही थी। देशद्रोहियों ने भी अपना काम किया, किन्तु

फ्रांस के पतन का मुख्य कारण उसकी मिथ्या अजेय भावना और सुखोपभोग ही है। महाकवि कालिदास ने इस उत्थान-पतन का वर्णन बहुत सुन्दर ढंग से किया है। उन्होंने लिखा है:—

'यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीनाम्-
आविष्कृताऽरुण पुरस्सर एकतोऽर्कः।
तेजो द्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्याम्-
कालो नियम्यत इवा मदशान्तरेषु॥"

एक ओर चन्द्रमा अस्त हो रहा है और दूसरी ओर सूर्य्य आकाश में उठ रहा है। विधाता ने उदय और अस्त होते हुए दोनों प्रकाशपुञ्जों के बीच मानों समय को सीमित कर दिया है। आप सूर्य्य और चन्द्रमा के स्थान पर किन्हीं भी जातियों के नाम रख कर इसी श्लोक को बोल लीजिये! आप देखेंगे कि समय के विषय में कही हुई यह उक्ति जातियों पर सत्यरूप में चरितार्थ होगी।

मानव जाति के इतिहास पर दृष्टि डालते ही यह बात साफ दिखाई देती है कि निर्बल नष्ट हो जाते हैं और बलवान् बच जाते हैं। जातियां उठती हैं और अपने समय के माप के अनुसार उठ कर फिर गिर जाती हैं। उनके स्थान पर दूसरी जातियां आ जाती हैं। वे भी उसी तरह उन्नत होती हैं और फिर लुप्त हो जाती है। कई हज़ार पूर्व उफ्रातु (यूफ्रेटस) और (टाईग्रस) नदियों की अन्तर्वेदी में सुमेरियन जाति का प्रादुर्भाव हुआ। चार हज़ार वर्ष तक यह जाति सिर उठाये रही। सुमेरियन लोग सभ्यता में ऊँचे थे। वे लिखना-पढ़ना जानते थे। उनके बनाये पुस्तकालयों के अवशेष आज भी उपलब्ध होते हैं। कला में भी इन्होंने उन्नति की थी। इनके जहाज़ दूर-दूर तक व्यापार करते

थे। चालीस सदियों तक सुमेरियन लोगों का बोलबाला रहा। इसी बीच सैमेटिक जातियां खड़ी हुईं और उन्होंने सुमेरियन साम्राज्य को नष्ट कर सैमेटिक साम्राज्य की स्थापना की। चिरकाल की सम्पत्ति और सुखभोग ने सुमेरियन जाति की जीवन शक्ति को नष्ट कर दिया। यही कारण है कि बलवान् सैमेटिक लोगों की टक्कर लगते ही चालीस सदियों से जमा हुआ साम्राज्य लड़खड़ा कर गिर पड़ा। सुमेरियन्स के बाद असीरियन्स, चैल्डियन्स, और ईजिप्शयन्स एक के बाद एक जाति चढ़ती और उतरती रही। इस चढ़ाव-उतार में यह देखा गया कि जो जाति उन्नति के शिखर पर पहुँची उसे वैभव ने प्रमादी बना दिया। सभ्यता, शिक्षा और विभूति में वह आगे बढ़ गई, परन्तु संग्राम करने की शक्ति में वह पिछड़ गई। यही कारण है कि जब किसी शक्तिशाली जाति ने उस पर चोट की तो वह गिर गई और उसकी लाश पर दूसरी जाति खड़ी हो गई।

ईसा से ५० वर्ष पूर्व ईरानी साम्राज्य खड़ा हुआ। उसकी एक सीमा ग्रीस से और दूसरी भारत से टकराती थी। एशिया योरुप और अमेरिका—तीनों महाद्वीपों पर ईरानी साम्राज्य फैला हुआ था। ईरान की उठती हुई शक्ति ने अपने से पूर्ववर्ती सब साम्राज्यों के मस्तक पर पाँव रख दिया था। २०० वर्ष तक ईरानी सम्राट् अपनी शक्ति बढ़ाते रहे। इसी समय योरुप के दक्षिण से एक ऐसी ज्वाला उठी, जिसने ईरान की शान को जला कर खाक कर दिया। मैसेडोनिया के एक नौजवान सरदार ने जिसका नाम सिकन्दर था, ग्रीस जीत लिया, ईरान बर्बाद कर दिया, मिश्र पर कब्ज़ा कर लिया और हिन्दुस्तान पर भी उसने

एक समय ऐसा आया जब रोम भी गिरने लगा। उस समय वह पश्चिमीय जगत् का सांस्कृतिक गुरु बन चुका था। रोम की विद्या, शिक्षा और कानून का सिक्का चलता था। रोम के खज़ाने देश-देशान्तरों की विभूति से भरे पड़े थे परन्तु रोम में जीवन घट रहा था। रोम की शान बढ़ रही थी, किन्तु जान कमज़ोर पड़ रही थी। इस संघर्षमय जीवन में करुणा की गुञ्जायश ही कहाँ है? कमज़ोर को मरना ही होगा और बलवान तब तक जीता रहेगा जब तक वह जीने के योग्य है। जहाँ सम्पत्ति और सफलता की मस्ती में वह निर्बल हुआ कि पराजय और मृत्यु उस के सामने आ खड़ी होती है। समय का पञ्जा बड़ा कठोर होता है। वह किसी से रियायत नहीं करता। समय का रथ आगे बढ़ता है। जो गिर गया सो पिस गया और जो खड़ा रहा वह रथ की सवारी करता है। वहाँ न प्रमाद को स्थान है और न आँसुओं की गुञ्जायश है। उससे केवल वही बच सकता है जो सावधान हो और चोटें खाकर भी खड़ा रह सकता हो। यही कारण है कि जिस रोम ने योरुप, एशिया और अफ्रीका पर निरंकुश शासन किया था, ईसा से ५०० वर्ष बाद उसके नाम के केवल बिखरे हुए खण्डहर दिखाई देते हैं। रोम की अतुल सम्पत्ति और उन्नत संस्कृति रोमन साम्राज्य की रक्षा न कर सकी।

बिल्कुल यही प्रक्रिया हमारे देश में भी हुई। मौर्य्यों के बाद शुंग, काण्व, आन्ध्र, गुप्त, वर्धन और मौर्य साम्राज्य बने और बिगड़े। एक के बाद दूसरा विजेता पहले योद्धाओं को अपनी विजयों से मात देता रहा। अन्त में जब हिन्दू राज्य का अन्त हुआ, उस समय हिन्दू संस्कृति का संदेश हिमालय और समुद्र

को पारकर जापान, कोरिया और चीन से लेकर सुदूर पूर्व के मलाया द्वीपसमूह तक फैल चुका था। स्वयं आक्रान्ताओं के धर्म देश—अरब में हिन्दू संस्कृति और कला-कौशल ने अपने चमत्कार दिखाये थे, पर ये सब श्रेष्ठतायें हिन्दू राज्य को मिटने से न बचा सकीं। अरब आक्रान्ता आते थे और अपने साथ हिन्दू पण्डितों और वैद्यों को ले जाते थे। वे हिन्दुओं के धर्म और बुद्धि की सर्वत्र यशोगाथा गाते थे, परन्तु ये कीर्त्तिकलाप हिन्दू-राज्य को नाश से न बचा सके। याद रखिये, अच्छी संस्कृति और श्रेष्ठ धर्म का अनुयायी होने मात्र से जातियाँ नहीं जिया करतीं। जातियां जीवनी शक्ति से जीती हैं। कुछ लोग हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता का वर्णन करके समझते हैं कि यदि हम अपने को धर्म में अंग्रेज़ों से अच्छा साबित कर दें तो शायद भारत आज़ाद हो जायेगा, परन्तु यह उनका भारी भ्रम है। यदि आप 'विश्व धर्म सम्मेलन' में जाकर यह प्रमाणित भी कर दें कि हमारा धर्म, संसार के सभी धर्मों में श्रेष्ठतम है और प्रत्येक हिन्दू, प्रत्येक योरुपीयन की अपेक्षा अधिक धर्मनिष्ट है, तो भी हमारी दशा में कोई फ़र्क नहीं पड़ सकता, प्रत्युत हमारी दशा और भी अधिक शोचनीय हो जायेगी कि इतने उच्च होकर भी हम पराधीन हैं। मैं फिर कहता हूँ कि अच्छे धर्म, अच्छी संस्कृति अथवा उन्नत कला से ही राष्ट्र नहीं जीते। प्लेटो के ग्रन्थों में लिखी बातें आज भी सत्य हैं, परन्तु उनकी सचाई ग्रीक को मरने से न रोक सकी। ग्रीस के उच्चतम देवता म्यूज़ियम्स की शोभा शोभा बढ़ाते हैं। विदेशी यात्री उन्हें देखते हैं और ग्रीक कला की प्रशंसा करते हैं, परन्तु कोई उन्हें पूजता नहीं है। यही बात मिश्र के विषय में

कही जा सकती है। वहाँ के निवासी नील नदी को उसी प्रकार स्वर्ग से उतरती हुई जीवन-धारा समझते थे, जिस प्रकार हिन्दू लोग गंगा को समझते हैं। आज नील नदी के किनारे पिरामिड बने हैं, मन्दिर खड़े हैं, पुराने राजाओं और देवताओं की प्रतिमायें स्थित हैं, परन्तु इनकी छाया में जो लोग जीते हैं वे नहीं हैं जिन्होंने इन्हें खड़ा किया था। जब कोई विदेशी यात्री मिश्र जाता है तो उसे Guide बताता है यह 'Phatah' का मन्दिर था। यह उसी की मूर्ति है। यह 'Mont' की प्रतिमा है। वे इनको दिखा दिखा कर मिश्र की पुरातन सभ्यता और कारीगरी की प्रशंसा करते हैं, परन्तु आज उस सभ्यता के अनुयायी वहाँ पर नहीं हैं। मिश्र वही है, पर वहाँ आज जाति दूसरी है। पत्थर वही हैं पर उनका अभिप्राय लुप्त है। नील नदी वही है, पर आज उस पर श्रद्धा के फूल चढ़ाने वाला कोई नहीं है। इसी प्रकार जब कोई सहृदयी हिन्दू देखता है कि हिन्दू जाति प्रतिदिन क्षीण हो रही है, इसकी संख्या धीरे-धीरे कम हो रही है, इसके अधिकार विरोधी शक्तियों द्वारा छीने जा रहे हैं और शनैः शनैः हिन्दू लोग राष्ट्रीय दृष्टि से अपना स्वत्व खो रहे हैं, तो उसके मन में हठात् यह प्रश्न उठता है कि कहीं पेगन ग्रीस, पेगन मिश्र और पेगन रोम की तरह हिन्दू राष्ट्र की भी दशा न हो? हो सकता है तब देश स्वतन्त्र हो, परन्तु वह स्वतन्त्रता हिन्दुत्व की लाश पर खड़ी होगी। क्या ऐसी स्वतन्त्रता आपको प्यारी होगी? निःसन्देह आप कहेंगे—नहीं। परन्तु यदि हिन्दू न जागे तो उनका यही भविष्य होने वाला है। हिन्दुओं की श्रेष्ठतम निधियाँ अजायबघर की शोभा बढ़ायेंगीं

और हिन्दू लोग Helots की तरह जीवन बितायें। याद रखिये इतिहास किसी की प्रतिज्ञा नहीं करता। उसने बड़े बड़े सम्राटों और साम्राज्यों की बाट नहीं जोई। कालचक्र बहुत भयानक है। जो गिरा सो पिस गया। जो जागरूक है वही उससे बच सकता है। यह समझना सरासर भूल है कि हमारी संस्कृति, धर्म और प्रथायें सर्वश्रेष्ठ हैं अतः हमें कोई नष्ट नहीं कर करता। धर्म, संस्कृति आदि बातें राजनीतिक शक्ति के साथ ही फैलती हैं। एक समय सारे उत्तरी अफ्रीका में ईसाईमत का प्रचार था, परन्तु आज वहाँ से उसका लगभग खात्मा ही हो गया है। क्यों? क्या कुरान की शिक्षाएँ बाईबल से श्रेष्ठ हैं? नहीं, अपितु अरबों में ईसाईयों की अपेक्षा जीवनी शक्ति अधिक थी। एक समय था जब स्पेन की तीन चौथाई जनता इस्लाम को मानती थी, परन्तु आज वहाँ से इस्लाम कहाँ चला गया? इसका कारण कुरान पर बाईबल की उच्चता नहीं है, अपितु स्पेन के कैथोलिक राजाओं का मुस्लिम शासकों से अधिक शक्तिशाली होना है। वैष्णव धर्म का प्रचार जितना नवद्वीप में हुआ उतना और कहीं नहीं, परन्तु आज नवद्वीप में हिन्दू ५½ लाख हैं और मुसलमान ६½ लाख हैं। क्या 'हरि' की अपेक्षा, 'अल्लाह' के नाम में अधिक जादू है? नहीं, अल्लाह के भक्तों की भुजाओं में ताकत अधिक है। सीमाप्रान्त और उनके पार के प्रदेश जहाँ आज पठान जातियाँ रहती हैं, किसी समय वे हिन्दू संस्कृति के प्रचार-केन्द्र थे, परन्तु आज वही प्रदेश मुस्लिम प्रधान होने से 'पाकिस्तान' के अड्डे बन रहे हैं। हिन्दू लोग सभायें करते हैं और अपने पर होने वाले

अत्याचारों का विरोध करते हैं, परन्तु इसके होते हुए भी अत्याचार जारी रहते हैं। विरोध करते हुए भी हिन्दू-विरोधी बिल पास हो जाते हैं। क्यों? कारण यह कि हिन्दू कमज़ोर हैं। अपने स्वत्वों की रक्षा के निमित्त उनमें सङ्गठन का अभाव है। एक हिन्दू विपत्ति में अपने को निराश्रित और असहाय समझता है, परन्तु एक मुसलमान ऐसी अशक्तता अनुभव नहीं करता। मुसलमानों में सङ्गठन का भाव विद्यमान है और हिन्दू अपनी जाति, बिरादरी और प्रांत की मर्यादाओं के बन्धनों में जकड़ा पड़ा है। मुसलमान के लिये इस्लाम संसारव्यापी है। पर्वत, नदी और समुद्र इस्लामी भाईचारे में बाधक नहीं होते परन्तु हिन्दू के सम्मुख राष्ट्रीयता का भाव कभी रहता ही नहीं। राष्ट्रीयता उस की वाणी में ही रहती है, परन्तु क्रिया में वह सदा जाति पाँतिकी भूल-भुलैयां में फंसा रहता है। यही कारण है कि छोटे से छोटे मुसलिम नौकर से लेकर बड़े से बड़े मुसलिम अधिकारी तक में अपनी कौम का दर्द पाया जाता है। वह अपनी स्थिति से भरसक जाति को लाभ पहुँचाता है और हिन्दुओं में एक राजा तक जाति-चिंतन न करके स्वार्थ-सागर में डूबा रहता है। इसी से हिन्दू-विद्या, बल और सामर्थ्य में सबसे अधिक होते हुए भी स्वार्थरत होने के कारण अत्यन्त शक्तिहीन हैं। बात-बात में अपमान सहते हैं किन्तु उसका प्रतिकार नहीं करते। यह निर्बलता तभी दूर होगी जब हिन्दू अपने में हिन्दू-भावना पैदा करेंगे। हिन्दू के नाते रहना और जीना सीखेंगे। हर बात पर हिन्दू दृष्टिकोण से विचारना सीखेंगे। तभी तीस करोड़ हिन्दुओं के देश में हिन्दुओं पर चोट करने का साहस तीन काल में भी किसी को नहीं हो सकेगा। सङ्कीर्णता और स्वार्थपरता से हिन्दुओं के दिल बहुत

छोटे हो गये हैं। साहस और उत्साह जाता रहा है। किसी बड़े काम को करने की क्षमता प्रायः नष्ट हो गई है। यहाँ तक कि अपने पूर्वजों के महान् कार्यों को सुनने की इच्छा भी इनमें नहीं रही है। बहुतेरों को तो अपने पूर्वजों की विजय-यात्राओं पर विश्वास तक नहीं आता है। यह दासता का परिणाम है। हमें अपनी पराजय ही स्मरण रह गई है और विजय भूल गई है। पहले से ही निर्बल बनी हुई जाति को अहिंसा, सहिष्णुता, दया आदि के उपदेशों ने कायर बना दिया है। आत्मविश्वास, आशा, दृढ़ता आदि गुण लुप्त हो गये हैं। अपनी जाति का उद्धार करने के लिये हमें हिन्दू बच्चों के सन्मुख महानता का आदर्श रखना होगा। पश्चिमीय देशों के बच्चे बचपन से ही अपने में विजय के भाव भरते हैं। परन्तु हमारे बच्चे स्तन्यपान के साथ ही भीरू भाव भरते हैं। हमें अहिंसा के जाप को छोड़ कर सैनिक शिक्षा लेनी होगी। अगली एक सदी तक हमें इसी पर बल देना होगा। मेरे नवयुवक भाईयो! हिंदू जाति की दुर्दशा को दूर करने का उत्तरदायित्व आप के ही कन्धों पर है। हमारी जाति में साधन सभी हैं, 'केवल उपयोग की ही कमी है'। ७२ लाख संन्यासी महात्मा पड़े हैं। ये संसार का त्याग कर चुके हैं। इन्हें खाने पीने की चिंता भी नहीं है। बड़े-बड़े अखाड़े इन की आवश्यकता पूर्त्ति के लिये पर्याप्त से कहीं अधिक हैं। यदि ये दृढ़ निश्चय के साथ जाति-उद्धार का बीड़ा उठा लें तो एक वर्ष में ही काया-पलट हो सकती है। संसार के श्रेष्ठतम धनी हमारी जाति में विद्यमान हैं। यदि इनका धन सङ्गठन के कामों में व्यय हो तो हिन्दुओं की किसी संस्था को चन्दा मांगने की आवश्यकता ही न पड़े। इसी प्रकार जगद्विख्यात हिन्दू विद्वान् हम में हैं। ये

लोग स्वार्थहित को छोड़ कर यदि जातिहित अपना उद्देश्य बनायें तो बड़ी से बड़ी समस्या हल हो सकती है। हमारी जाति की दशा बिखरे रेत की तरह है। उसमें यदि सीमेंट रूप सङ्गठन कर दिया जाये तो हम संसार में महान् आश्चर्य के काम कर सकते हैं। अन्त में मैं आप को विश्वास दिलाता हूँ कि भारत को स्वराज्य कांग्रेस के मार्ग से न मिलेगा; स्वराज्य की सीधी राह है—हिंदु सङ्गठन। कांग्रेस तो एक अस्त होता हुआ सूर्य है और हिंदु-सभा अन्धकार में उदित होता हुआ चन्द्रमा है। अन्य संस्थायें आकाश के एक कोने में टिमटिमाने वाले नक्षत्रों के समान हैं। उठो! देश की स्वाधीनता के लिये, जातीय एकता के निमित्त और भारत की अखण्डता कायम रखने के लिये एक हिन्दू नाम से, एक हिन्दू ध्वज के नीचे, हिंदू स्वातन्त्र्य का उद्देश्य सम्मुख रख कर हिंदुसभा का आंदोलन देश के कोने-कोने में प्रचलित कर दो। यह हिंदू ध्वज आप में साहस पैदा करे। राम और कृष्ण चन्द्रगुप्त और विक्रमादित्य, शिवा और प्रताप की आत्मायें आप को प्रेरित करें। आप अन्धकार से प्रकाश की ओर बढ़ें! आपका मार्ग विजय से विजय की ओर अग्रसर हो!! पराजय और निराशा कभी आपकी राह न रोके!!!

—— ——

[यह भाषण श्री पं० चन्द्रगुप्त जी वेदालङ्कार ने बलिया, संयुक्त प्रान्त में युवक सम्मेलन के प्रधान पद से दिया था]

हिन्दुओं का राजनीतिक आदर्श

बन्धुओ !

आप लोगों ने मुझे हिन्दू सभा के १६ वें वार्षिक अधिवेशन का अध्यक्ष चुनकर मेरे प्रति जो विश्वास प्रकट किया है उसके लिये मैं आप लोगों का हृदय से आभारी हूं। इस पद को मैं अपने लिये कोई सम्मान नहीं समझता हूं, प्रत्युत अपनी जाति की अपने प्रति आज्ञा समझता हूं कि अब भी जो कुछ शक्ति मुझ में अवशिष्ट है उससे अपनी पुण्यभूमि की सेवा कर सकूँ।

सबसे पूर्व मैं भारत के समस्त हिन्दुओं की ओर से एक मात्र स्वतन्त्र हिन्दू राजा नैपाल के प्रति जिन्होंने इस अन्धकार युग में भी हिमालय के उच्चतम शिखर पर हिन्दू-पताका को शान से

खड़ा रक्खा है, अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करना कर्त्तव्य समझता हूं। नैपाल के महाराजा ही एक मात्र ऐसे हिन्दू हैं जो राजाओं और सम्राटों की सभा में सीना निकाल कर, गर्व से मस्तक ऊँचा करके उसी सम्मान को प्राप्त करते हैं जिसे इंग्लैंड, फ्रांस, इटली आदि के राजा और राष्ट्रपति उपलब्ध कर रहे हैं। इसके पश्चात् मैं बालि द्वीप के हिन्दुओं के प्रति अपना स्नेह भरा संदेश भेजता हूं जो कि मातृभूमि भारत से हज़ारों मील दूर रहते हुए आज भी हमारी संस्कृति, धर्म और मर्यादा को अक्षुण्ण बनाये हुए हैं। हिन्दु महासभा का यह अधिवेशन पूर्ण नहीं कहा जायेगा यदि मैं अफ्रीका, अमेरिका, मौरिशस आदि द्वीपों और महाद्वीपों के प्रवासी हिन्दुओं को स्मरण नहीं करता, जो कि किसी प्रकार का दिखावा किये बिना इहदेशीय संस्कृति का विस्तार कर आज भी 'बृहत्तर भारत' का निर्माण कर रहे हैं, और नाहिं हम 'फ्रैंच भारत' तथा 'पोर्चगीज़ भारत' के हिन्दुओं को ही भुला सकते हैं। हमें ये शब्द ही अपने लिये अपमान जनक प्रतीत होते हैं। हमें निःसंकोच भाव से घोषित कर देना चाहिये कि काश्मीर से रामेश्वरम् पर्य्यन्त तथा सिन्ध से आसाम पर्यन्त यह देश एक है।

'हिन्दू' शब्द की व्याख्य

क्योंकि हिन्दुसभा की सम्पूर्ण राजनीति 'हिन्दू' शब्द की परिशुद्ध व्याख्या पर निर्भर करती है, अतः सब से पहले यह जानना ज़रूरी है कि 'हिन्दुत्व' क्या वस्तु है?

आसिन्धुसिन्धुपर्य्यन्ता यस्य भारतभूमिका।
पितृभूः पुण्यभूश्चैव स वै हिन्दुरिति स्मृतः॥

अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति जो सिन्धु नदी से समुद्र पर्यन्त इस भारतभूमि को अपनी पितृभूमि और पुण्यभूमि समझता है, वह हिन्दू है। हिन्दू शब्द की यह व्याख्या भ्रमात्मक है कि भारतखण्ड में उत्पन्न हुआ किसी भी धर्म को मानने वाला व्यक्ति हिन्दू है, क्योंकि यह तो हिन्दुत्व के एक ही अंग की व्याख्या करता है। भारतीय मूल वाले धर्म को मानने मात्र से ही काम नहीं चल सकता। उसे देश को पितृभूमि भी मानना होगा। इसलिये हिन्दुत्त्व वह वस्तु है जिसके द्वारा राष्ट्र के लोग विविध धर्मों की जननी इस पुण्यभूमि के ही साथ एक समान रूप से नहीं बंधे हुए, अपितु एक संस्कृति, एक भाषा, एक इतिहास और एक पितृभूमि के बंधन में भी दृढ़ता से जकड़े हुए हैं। इसलिये 'पितृभू:' और 'पुण्यभू:'—ये दोनों शब्द मिल कर ही हमारे 'हिन्दुत्व' का निर्माण करते हैं और हमें संसार के अन्य लोगों से पृथक करते हैं। यही कारण है कि चीनी और जापानी हिन्दू नहीं कहे जा सकते। दोनों देशों के लोग भारतवर्ष को अपनी पुण्यभूमि तो मानते हैं, क्योंकि उनके धर्म का आविर्भाव इसी देश में हुआ, परन्तु ये इस देश को अपनी पितृभूमि नहीं कह सकते, क्योंकि उनके पूर्वज यहां पैदा नहीं हुए। वे हमारे धर्मबन्धु और सहधर्मी हैं परन्तु हमारे देशवासी नहीं हैं। और हम हिन्दू लोग परस्पर धर्मबन्धु और देशवासी—दोनों ही हैं। चीन जापान, बर्मा आदि देशों के लोग किसी भी 'हिन्दू धर्म महासभा' में एकत्र होकर भाग ले सकते हैं क्योंकि यह हिन्दू राष्ट्र की राष्ट्रीय संस्था है। मुसलमान यहूदी, पारसी, ईसाई आदि हिन्दू की अवस्था में सम्मिलित नहीं होते, क्योंकि वे इस देश को अपनी पितृभूमि तो

मानते हैं, परन्तु इसे अपनी पुण्यभूमि नहीं समझते। यहाँ मैं यह भी स्पष्ट कर देना उचित समझता हूँ कि हिन्दू नाम विदेशियों द्वारा निन्दा रूप में रक्खा हुआ नहीं है प्रत्युत, यह तो वैदिक शब्द 'सप्तसिन्धु' का अपभ्रंश मात्र है। आज भी हिन्दुस्थान के सीमावर्ती प्रांत का नाम 'सिन्ध' है और वहाँ के लोग 'सिन्धी' कहे जाते हैं। इस विषय को विस्तारपूर्वक जानने के लिये मैं आप लोगों से अपनी लिखी 'हिन्दुत्व' पुस्तक पढ़ने का आग्रह करूँगा।❀

हिन्दू-सभा मुख्यतः राष्ट्रीय संस्था है

उपरोक्त व्याख्या के आधार पर हिन्दू धर्म और हिन्दुत्व—इन दोनों शब्दों में महान् अन्तर है। हिन्दू धर्म का सम्बन्ध हिन्दुओं की प्रथाओं और मर्यादाओं के साथ है जो कि हिन्दुत्व का एक अंगमात्र है, परन्तु हिन्दू सभा की भित्ती हिन्दू धर्म पर नहीं, हिन्दुत्व पर खड़ी है। यदि महासभा हिन्दू धर्म की ही प्रतिनिधि संस्था होती तो इसका नाम 'हिन्दू धर्म महासभा' होता, परन्तु इसका नाम तो 'हिन्दू महासभा' है, क्योंकि यह हिन्दू राष्ट्र की प्रतिनिधि संस्था है। हिन्दुओं के धर्म को ही नहीं, प्रत्युत उन की सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक उन्नति करना ही इसका मुख्य उद्देश्य है। इसलिये जो लोग महासभा को धार्मिक संस्था समझते है वे भारी ग़लती करते हैं।

❀ वीर सावरकर लिखित 'हिदुत्व' हमने बड़े सुन्दर रूप में प्रकाशित किया है जिस में स्वातन्त्र्य-वीर सावरकर का संपूर्ण जीवन चरित्र भी दिया हुआ है। मूल्य एक रुपया।

—राजपाल एण्ड सन्ज़, सरस्वती आश्रम, अनारकली, लाहौर।

कुछ सज्जन 'हिंदू सभा एक राष्ट्रीय संस्था है' इतना सुनकर ही चौंक उठते हैं और मुझ से प्रश्न करते हैं कि हिन्दू लोग जो जीवन के विविध क्षेत्रों में इतनी भिन्नता रखते हैं क्या वे सचमुच एक राष्ट्र हैं ? ऐसे लोगों को मेरा उत्तर है कि संसार में ऐसी कोई जाति नहीं है जिसमें नस्ल, भाषा, धर्म और संस्कृति की पूर्ण समानता हो। किसी भी जाति की राष्ट्रों में गणना धर्म, भाषा आदि की एकता पर आश्रित नहीं है, प्रत्युत इन्हीं बातों में दूसरे राष्ट्रों से पृथक्ता पर निर्भर करती है। वे लोग जो हिन्दुओं को एक राष्ट्र मानने से कतराते हैं वे ही ग्रेटब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस, जर्मनी आदि देशों को प्रसन्नतापूर्वक एक राष्ट्र मानते हैं। इन देशों को राष्ट्र मानने में क्या आधार है ? इंग्लैंड का ही उदाहरण लीजिये। यहां तीन भाषायें बोली जाती हैं। नस्ल और रक्त की विषमता भी यहां विद्यमान है। भूतकाल में वहाँ के लोग परस्पर खूनी लड़ाइयों में भी व्याप्त रहे हैं। यदि आप यह कहें कि इन विषमताओं के होते हुए भी अंग्रेज़ एक राष्ट्र हैं क्योंकि उनकी भाषा, संस्कृति और उनका देश एक हैं, तो ये बातें हिन्दुओं में भी पाई जाती हैं। हमारा देश-हिन्दुस्थान एक है जिसे विधाता ने बड़ी निपुणता से एक इकाई बनाया है। हमारी भाषा संस्कृत है जो सब प्रांतीय भाषाओं की जननी है। अनुलोम और प्रतिलोम विवाह के कारण हमारा रक्त भी मनु के समय से आज तक एक है। हमारी प्रथाएं और संस्कार, त्योहार तथा पर्व भी एक होते हैं। हमारी पुण्यभूमि भी एक ही है। वैदिक ऋषि हमारी पूजा के पात्र हैं। कालिदास और भवभूति हमारे अमर कवि हैं। राम और कृष्ण हमारे महापुरुष हैं। प्रताप और शिवा हम सबके लिये वीरता के आदर्श हैं। हमारे शत्रु और मित्र एक हैं। हमने सुख और दुःख

एक साथ मिल कर झेले हैं। स्वतन्त्रता में हम एक थे और आज परतन्त्रता में भी हम एक हैं। यदि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका—जर्मन, नीग्रो, अंग्रेज़, फ्रैंच आदि परस्पर झगड़ालू जातियों के समुदायों से भरा हुआ होने पर भी केवल चार-पांच सौ वर्ष पुरानी संस्कृति के कारण एक राष्ट्र माना जा सकता है तो हिन्दुओं को एक राष्ट्र होने से कौन रोक सकता है? राष्ट्र बनने के लिये जिन योग्यताओं की आवश्यकता है वे सब हिंदुओं में सब से अधिक पाई जाती हैं। जो कुछ थोड़ी सी भिन्नता हिंदुओं में विद्यान है, वह भी अब लुप्तप्राय हो रही है और हिन्दू लोग एक राष्ट्र के रूप में उठ रहे हैं। जब हिंदू स्वतः ही एक राष्ट्र हैं तो उनकी हिन्दुसभा भी एक राष्ट्रीय संस्था है।

हमारे कुछ देशभक्त भाई हिंदुसभा को साम्प्रदायिक संस्था मानते हैं, क्योंकि वह हिंदुत्व का प्रतिनिधित्व करती है और हिंदुओं के उचित तथा न्याय अधिकारों की रक्षा करती है। ऐसे लोगों को मैं बताना चाहता हूँ कि राष्ट्रीयता और साम्प्रदायिकता ये दोनों आपेक्षिक बातें हैं। क्या अपने को 'भारतीय देशभक्त' कहना 'विश्वबन्धुत्व' के सामने हीन भावना नहीं? यदि हिंदुसभा केवल हिंदूराष्ट्र की प्रतिनिधि है तो क्या कांग्रेस केवल भारतीय राष्ट्र का प्रतिनिधित्त्व करने का दावा नहीं करती? क्या मानव-राष्ट्र के सम्मुख 'भारतीय राष्ट्र' का विचार ओछा नहीं है? सचाई यह है कि पृथ्वी हमारी माता है और मानव समाज हमारा राष्ट्र है। इसलिये मानव राष्ट्र के सम्मुख देश विशेष की राष्ट्रीयता का आन्दोलन साम्प्रदायिक है और संसार के इतिहास में महान् अनर्थों का उत्पादक सिद्ध हुआ है। परन्तु राष्ट्र विशेष के लोग

भाषा, धर्म, संस्कृति आदि के कारण अन्य राष्ट्रों के लोगों की अपेक्षा एकता के सूत्र में अधिक निकटता से बँधे रहते हैं, इस लिये वे लोग अपने राष्ट्र की रक्षा को सर्वप्रथम कर्त्तव्य समझते हैं। बिलकुल यही बात हिन्दुसभा के विषय में भी कही जा सकती है। संसार का कोई भी आन्दोलन केवल इस लिये साम्प्रदायिक नहीं कहा जा सकता, कि वह सम्प्रदाय विशेष का प्रतिनिधित्व करता है, प्रत्युत वह दोषी तब होता है जब वह दूसरे सम्प्रदायों के प्रति आक्रमणात्मक हो जाता है। इस आधार पर भी हिन्दुसभा का आन्दोलन पूर्ण राष्ट्रीय है। हिन्दूसभा, हिन्दू-राष्ट्र की प्रतिनिधि संस्था होने से हिन्दुओं का पुनरुत्थान चाहती है। इस देश के साथ जितनी घनिष्ठता से हिन्दुओं का भविष्य बंधा हुआ है उतना अहिन्दुओं का नहीं है। अहिन्दुओं में विशेषतया मुसलमान इस देश से हिन्दुओं के समान प्रेम नहीं करते। उनके लिये इस देश में उत्पन्न होना कोई विशेष महत्व नहीं रखता। उनके मुख सदैव मक्का और मदीना की ओर मुड़े रहते हैं। परन्तु, हिन्दुओं का पितृभूमि के साथ-साथ पुण्यभूमि भी यही देश होने से उनका सर्वस्व ही हिन्दुस्तान है। इसीलिये हिन्दुओं में देश का दर्द अधिक पाया जाता है। और मुसलमानों को अपने पड़ोसी-हिन्दू की अपेक्षा अरब और पैलस्टाईन की अधिक चिंता रहती है। यही कारण है कि स्वतन्त्रता के संग्राम में हिंदू सैनिकों की संख्या ही अत्यधिक दिखाई देती है। हिंदू ही फाँसी पर झूले। हिंदू ही अंदमान में सड़े और हिंदू ही कारागारों में बंद हुए। आज कांग्रेस की भी जो शक्ति है वह सब हिंदुओं के ही कारण है। इसी से हिंदूसभा 'हिंदू' और 'भारत' दोनों शब्दों को पर्याय

समझते है। हमारे लिये 'हिंदू राष्ट्र' और 'भारतीय राष्ट्र' एक ही अर्थ रखते हैं और हिंदू राजनीति तथा भारतीय राजनीति का अभिप्राय भी एक ही होता है। इस दशा में हमारे लिये Indian Independenee का मतलब हुआ—हिन्दू राष्ट्र की स्वतन्त्रता, जिसमें हम अपने धर्म, संस्कृति आदि का पूर्ण विकास कर सकें। भौगोलिक दृष्टि से तो भारत देश औरंगज़ेब के समय भी स्वतन्त्र था, परन्तु वह स्वतन्त्रता हिन्दू राष्ट्र के लिये मृत्यु-तुल्य थी। इसीलिये राणा सांगा और राणा प्रताप, गुरु गोबिन्द और बंदा बहादुर शिवाजी और बाजीराव हिंदूराज्य की स्थापना के निमित्त आमरण जूझते रहे और अन्त में मराठों, सिक्खों और राजपूतों ने मुसलमानों के प्रभुत्व से इस पुण्यक्षेत्र को छुड़ा कर हिंदू साम्राज्य की स्थापना की। क्या हमारा इतिहास यह नहीं बताता कि केवल भौगोलिक स्वाधीनता ही हिंदुओं के लिये स्वतंत्रता नहीं हो सकती? हमें हिन्दुस्तान इसलिये प्यारा है क्योंकि यह हिन्दुओं का अपना घर है। अन्यथा भूमि की दृष्टि से सोने चाँदी की खानों से भरा हुआ भारत से भी अधिक समृद्ध देश संसार में मिल सकता है और नदी की दृष्टि से मिसिस्पी भी उतनी ही श्रेष्ठ है जितनी कि गंगा। अन्य देशों के जंगल और पर्वत भी भारत के जंगलों और पर्वतों के समान ही सुन्दर हैं। भारत हमें इसलिये प्यारा नहीं क्योंकि इसके समान सुन्दर देश संसार में नहीं है, प्रत्युत, यह हमें इसलिये सब से प्यारा है क्योंकि हमारे पितरों और देवताओं की भूमि यही है। यहीं पर हमारी माताओं ने अपनी गोदियों में बिठाकर हमें दुग्धपान कराया और इसी भूमि में हमारे पिताओं ने हमें अंगुली पकड़

कर चलना सिखाया। यहूदियों और पारसियों पर दृष्टिपात कीजिये। जब उनके सामने अपने देश और धर्म का विकल्प उपस्थित हुआ तो उन्होंने देश का त्याग कर दिया, परन्तु अपने धर्म और संस्कृति को लेकर उसकी रक्षा के लिये सुखप्रद स्थान की तलाश में निकल पड़े। उन्होंने चप्पा भर ज़मीन के सुख के बदले अपने धर्म को नहीं बेचा। इसलिये स्वराज्य का अर्थ भूमिखण्ड की स्वतन्त्रता ही नहीं हैं। हिन्दुओं के लिये हिन्दुस्थान तभी स्वतन्त्र समझा जायेगा जब हमारे धर्म, संस्कृति, भाषा और प्रथाओं को पनपने का सुयोग्य अवसर उसमें रहेगा। हिन्दुत्व को खोकर उसकी लाश पर खड़ा किया हुआ स्वराज्य हमें कदापि मान्य नहीं हो सकता।

अल्पमतों की समस्या

महासभा चाहती है कि भारतीय राष्ट्र विशुद्ध भारतीय बने। नौकरी, पद, टैक्स, वोट, किसी भी विभाग में धर्म और नस्ल-विशेष के कारण किसी भी व्यक्ति से पक्षपात न किया जाये। योग्यता के आधार पर ही सब से व्यवहार किया जाये। संसार के अन्य देशों की भाँति बहुमत की भाषा और लिपि ही राष्ट्रीय भाषा और राष्ट्रीय लिपि होनी चाहिये। एक व्यक्ति को एक ही वोट, यही हमारा न्यायसंगत सिद्धान्त है। यही हिन्दुस्थान का राजनीतिक आदर्श है। क्या इससे अधिक राष्ट्रीय दृष्टिकोण और हो सकता है? न्याय की मांग तो यह है कि मैं स्पष्टतया घोषित करूँ कि हिन्दुसभा का दृष्टिकोण कांग्रेस की वर्त्तमान नीति से कहीं अधिक राष्ट्रीय है। हिन्दू लोग उस से अधिक कुछ नहीं चाहते जो उन्हें इस देश के नागरिक

होने की हैसियत से प्राप्त होना चाहिये। यद्यपि हमारा इस देश में बहुमत है तो भी बहुमत के नाते हम कोई विशेषाधिकार नहीं चाहते। क्या मुसलमान ऐसे भारतीय राष्ट्र में सम्मिलित होने को तैयार हैं? क्या वे इस बात के लिये उद्यत हैं कि मुसलमान होने के नाते वे किसी प्रकार की रियायत न मांगेंगे? क्योंकि उनका मुसलमान होना कोई पुण्य का चिह्न नहीं है और हिन्दू होना कोई पाप कर्मों का फल नहीं।

मुसलमानों की अराष्ट्रीय चालें

हमारे सौभाग्य से मि० जिन्ना और उनकी लीग ने अपने इरादे प्रकट कर दिये हैं। मैं उन्हें इसके लिये धन्यवाद देता हूँ। संदेहात्मक मित्र की अपेक्षा प्रकट शत्रु अच्छा होता है। आज तक मुसलमानों की मनोवृत्ति बताने में हमें कठिनता होती थी, परन्तु अब उन्होंने अपनी मनोदशा का स्वयमेव दिग्दर्शन करा दिया है। मुस्लिम लीग शुद्ध उर्दू को भारत की राष्ट्रभाषा बनाना चाहती है। वे 'बन्देमातरम्' गीत को सह नहीं सकते हैं। कांग्रेस ने मुसलमानों को खुश करने के लिए इसकी काट-छाँट कर दी, परन्तु मुसलमानों को 'बन्देमातरम्' शब्द ही सह्य नहीं है। वे तब तक सन्तुष्ट नहीं हो सकते जब तक कि कोई मुसलमान ही पाकिस्तान की प्रशंसा में गीत नहीं बनाता। एकता के चक्कर में पड़े हुए कांग्रेसी यह नहीं समझते कि हिन्दू-मुस्लिम एकता में रुकावट एक-दो गीत अथवा दो-चार शब्द नहीं हैं। यदि ऐसी ही बात रहती तो हम एकता के लिये दर्जनों गीत और सैंकड़ों शब्द त्याग सकते थे, परन्तु हम जानते हैं कि यह प्रश्न इतना सीधा नहीं है जितना कि हमारे कांग्रेसी मित्र समझते हैं।

मुसलमानों का वास्तविक उद्देश्य इस देश में फिर से मुस्लिम राज्य कायम करना है। गीत आदि का विरोध तो उसके बाह्य चिह्न हैं। हिन्दू-सभा के प्रधान होने के नाते मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि हम इस बात को किसी भी दशा में न होने देंगे। क्योंकि ऐसा करने से इसमें न केवल हिन्दुओं का ही भला है, अपितु, राष्ट्र की भलाई भी इसी में है। हमारी इस चेतावनी को सुन कर मौलवी फ़जलुल हक ने बङ्गाल के प्रधान मन्त्री के आसन से हिन्दुओं को धमकी दी है कि मैं अपने प्रान्त में हिन्दुओं को सज़ा दूँगा। बङ्गाली हिन्दुओं के बलिदान से आज मौ० हक ने जिस पद को प्राप्त किया है उसी पद से वह हिन्दुओं को धमका रहा है; परन्तु उसे निश्चय जानना चाहिये कि बङ्गाली टेढ़ी खीर हैं। उन्होंने लार्ड कर्जन जैसे हठीले ब्रिटिश अधिकारी को घुटने टिकाये हैं। यदि मौ० हक ने बङ्गाली हिन्दुओं पर किसी प्रकार का अत्याचार किया तो महाराष्ट्र के हिन्दू अपने यहाँ उसका बदला लेने से न चूकेंगे। हम ईंट का जवाब ईंट और पत्थर का जवाब पत्थर से देंगे। साम्प्रदायिक निर्णय और फिडरेशन के विषय में मुसलमानों का रुख विश्वविदित ही है। आज तो वे पाकिस्तान की स्थापना के लिये हमारी भारत-माता का अंगच्छेद ही करने पर उतारू हैं। मैं कहता हूँ—खबरदार! खबरदार! हिन्दुओं की दुर्दशा सोचने से पूर्व औरङ्गज़ेब की कथा याद करो। दिल्ली के राजसिंहासन पर बैठ कर भी वह अपने मनोरथ पूर्ण नहीं कर सका था। इसके विपरीत उसने अपने ही हाथों से अपनी कबर खोदी थी। निश्चय ही जिन्ना और हक वह करने में असफल होंगे जिसे औरङ्गज़ेब नहीं कर सका था।

एकता तभी होगी जब मुसलमान चाहेंगे

हिन्दुओं को समझ लेना चाहिये कि इस स्थिति का मुख्य कारण हिन्दुओं का एकता के लिये पागल बनना है। जिस दिन से हमने मुसलमानों को बताया है कि तुम्हारे बिना स्वराज्य नहीं मिल सकता उसी दिन से एकता होनी असम्भव हो गई है। जब कोई बहुमत जाति अपने स्वाभिमान को बेच कर अल्पमत जाति के चरणों में गिड़गिड़ाती है तो वह न केवल उस देश में अल्पमत ज़ाति का प्रभुत्व ही स्थापित करती है, प्रत्युत बहुमत जाति का सर्वनाश ही कर डालती है। इसी का परिणाम है कि आज मुसलमान यह धमकी दे रहे हैं कि हम तब तक हिन्दुओं से न मिलेंगे जब तक हमारी माँगें न मानी जायें! हिन्दू लोग इस स्थिति में स्पष्ट घोषणा कर देवें—"बन्धुओ! हम केवल उस प्रकार की एकता के इच्छुक हैं जिससे एक व्यक्ति का एक ही वोट के सिद्धान्त पर ऐसे भारतीय राष्ट्र की सृष्टि होगी जिसमें धर्म, जाति, भाषा, रंग आदि के कारण किसी से पक्षपात न किया जायेगा।" मुसलमानों की राष्ट्र-विरोधी मनोवृत्ति का ध्यान रखते हुए 'ब्लैंक चैक' हम कदापि न देंगे। हम ऐसा स्वराज्य लायेंगे जिसमें हमारा 'स्वत्व' सुरक्षित रहेगा। हम अंगरेज़ों से इसलिये नहीं लड़ते कि इस देश के स्वामी मुसलमान बन जायें। हम अपने घर के स्वामी स्वयं बनना चाहते हैं। हिन्दुत्व को खोकर प्राप्त किया हुआ स्वराज्य आत्म-हत्या के तुल्य है। इसलिये भविष्य में हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिये हमारा फ़ार्मूला इस प्रकार होना चाहिये—यदि तुम आते हो तो तुम्हारे साथ, यदि नहीं आते तो तुम्हारे बिना ही, और यदि विरोध करते हो तो उसके होते हुए

भी हम हिन्दू लोग स्वराज्य की लड़ाई उसी प्रकार जारी रक्खेंगे जिस प्रकार हम भूतकाल में लड़े हैं।"

जहाँ तक मुसलमानों के अतिरिक्त अन्य जातियों का प्रश्न है, उन से एकता करने में कठिनाई नहीं है। पारसी लोगों ने दादा भाई नारौजी से लेकर मैडम कामा पर्यन्त स्वतन्त्रता की लड़ाई में अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया है। ये लोग न धर्मान्ध हैं और नांही विरोधी हैं। सांस्कृतिक दृष्टि से भी ये हिन्दुओं के निकट हैं। यही बात कुछ हद तक ईसाइयों के लिये भी कही जा सकती है। यद्यपि स्वातन्त्र्य-संग्राम में इनका योग कम रहा है, तथापि ये हमारे उद्देश्यों में रोड़ा भी नहीं बने हैं। इनमें धर्मान्धता भी बहुत नहीं है और ये बड़े मिलनसार हैं। यहूदियों की संख्या अत्यल्प है और वे हमारी आकांक्षाओं का विरोध भी नहीं करते हैं। ऐंग्लो-इंडियन लोगों को उनकी संख्या से बहुत अधिक अधिकार मिले हैं। स्वतन्त्रता प्राप्त होते ही यह अन्याय दूर कर दिया जायेगा। परन्तु मुसलमान इन सब अल्पमतों से भिन्न प्रकार के हैं। ये लोग जिस किसी प्रकार हो, इस देश में मुस्लिम राज्य स्थापित करने के इच्छुक हैं। इसलिये इनके साथ मिलते हुए हमें सदा जागरूक रहना होगा।

केवल हिन्दुत्वाभिमानियों को वोट दो

ऐसी दशा में मैं आप लोगों से आग्रह करता हूँ कि आप लोग हिन्दू के नाते जीना सीखें। हिन्दू नाम से घबराना छोड़ दें। हिन्दू होना कोई देशद्रोहिता नहीं है। राम, कृष्ण, शिवा और प्रताप की जाति में उत्पन्न होना कोई अपमान की बात नहीं

है। इस सूर्यमण्डल के नीचे हम भी इस देश में हिन्दू की हैसीयत से शक्तिशाली जाति के रूप में जीना चाहते हैं। इसलिये शुद्धि आन्दोलन को पुनर्जागृत कीजिये। इससे हमें न केवल धार्मिक लाभ ही होगा, अपितु राजनीतिक सहयोग भी मिलेगा। पारस्परिक संगठन में तत्पर हो जाइये। जो कुछ थोड़ी सी राजनीतिक शक्ति आपको प्राप्त हुई है, उस पर क़ब्ज़ा कीजिये। मुसलमान चुनाव में केवल उन्हें ही वोट देते हैं जो पक्का मुसलमान होता है और मुस्लिम हितों की रक्षा का वचन देता है। परन्तु हिंदू मूर्खतावश उन्हीं को अपना प्रतिनिधि चुनते हैं जो अपने को हिंदू कहते हुए सकुचाते हैं किंतु मुसलमानों के सम्मुख हिंदुओं के न्याय्य अधिकारों को बेचते हुए जिन्हें तनिक भी संकोच नहीं होता। इसी से आज मुस्लिम लीग की इतनी शक्ति बन गई है और हिंदुओं की उपेक्षा होने लगी है। यदि आप चाहते हैं कि हिंदुओं के हितों की रक्षा हो तो आप लोग केवल उन्हें ही चुनावों में वोट दें जो अपने को हिन्दू कहने में गर्व समझें और हिन्दू हितों की रक्षा के लिए वचनबद्ध हों। इस प्रकार सच्चे हिंदुओं को जब आप चुनेंगे तो वे सात प्रान्तों में मंत्रिमण्डल बना कर उसी प्रकार हिंदू हितों की रक्षा करेंगे जिस प्रकार मुस्लिम मंत्रि-मण्डल मुसलिम हितों की करता है।

हमारा भूत उज्ज्वल था, भविष्य भी उज्ज्वल होगा

अन्त में मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यदि आप अपने में हिम्मत न हारें और दृढ़ आत्मविश्वास रक्खें तो वह सब मैदान जो हम खो चुके हैं शीघ्र ही पुनः हस्तगत किया जा सकता है। हम में आज भी ऐसी जीवनीशक्ति विद्यमान है जो संसार की अन्य किसी भी जाति में नहीं है। हमने प्रागैतिहासिक

काल में दैत्यों और असुरों को हराया था। इस जीवन-संग्राम में बड़ी-बड़ी जातियाँ समाप्त हो गईं, किन्तु हम हिंदू लोग किसी अलौकिक शक्ति की महिमा के कारण आज भी करोड़ों की संख्या में जीवित हैं। प्रत्येक जाति के जीवन में चढ़ाव-उतार आया ही करते हैं। वह इंगलैण्ड जो आज संसार भर पर साम्राज्य स्थापित किये हुए है एक दिन वह भी रोमन लोगों की साम्राज्य-लिप्सा का शिकार हुआ था। हमें भी बड़ी-बड़ी आपदायें सहनी ही पड़ेंगी और उन पर विजय भी पानी होगी। ग्रीक लोग सिकन्दर के नेतृत्व में उस समय समस्त संसार पर टूट पड़े, परन्तु वे हिन्दुस्तान को न जीत सके। चन्द्रगुप्त मौर्य्य खड़ा हुआ और उसने ग्रीकों को बुरी तरह परास्त करके उन पर अपनी सांस्कृतिक और राजनीतिक छाप बिठा दी। तीन शताब्दि बाद हूण लोग टिड्डी दल की तरह टूट पड़े। समस्त योरुप और आधा एशिया उनके चरणों में पड़ा था। रोमन साम्राज्य को उन्होंने छिन्न-भिन्न कर दिया। दो सौ वर्ष के निरन्तर युद्धों के पश्चात् अन्त में वीर विक्रमादित्य के नेतृत्व में हमने हूणों को भी मार भगाया। यशोधर्मा और शालिवाहन की शक्तिशाली सेनाओं ने शकों को कुचल डाला। आज वे शक हूण इत्यादि कहां हैं? उनके तो नाम भी आज लुप्त हो गये हैं। इसके शताब्दियों बाद मुसलमानों ने हम पर हमला किया। वे विजयी हुए और उन्हों ने अपने राज्य स्थापित किये, परन्तु शिवा जी की उत्पत्ति के समय युद्ध के देवता ने सदा हमारा साथ दिया। हमने उन्हें अनेकों संग्रामों में परास्त किया। उनके नवाबों, शाहों और बादशाहों को घुटने टिकाये और अंत में पानीपत संग्राम में हिंदू सेनापति भाऊ जी पेशवा ने मुग़ल सिंहासन के ही टुकड़े

कर दिये। महाराजी शिंदे ने मुग़ल सम्राट को कैदी ही बना लिया था। एक बार फिर से इस देश में हिंदू राज्य स्थापित हो गया था। मुसलमानों से छीने हुए प्रदेशों को अभी हम ठीक तरह सम्भाल न सके थे कि अंगरेज आ धमके और उन्होंने सब प्रदेश हम से जीत लिये। यद्यपि हम लड़ाई हार चुके हैं, परन्तु हमने हिम्मत नहीं हारी है। हम युद्ध में परास्त हुए हैं, परन्तु हमने मैदान नहीं छोड़ा है। हमारा स्वातन्त्र्य संग्राम जारी है। कौन जानता है कि अगला भाग्यशाली प्रधान हिंदुसभा के अध्यक्ष पद से यह घोषणा करता हुआ सुनाई दे—"जिस प्रकार हमने ग्रीकों, शकों, हूणों और मुग़लों को पछाड़ा था और इस भारत भू को बंधनमुक्त किया था उसी प्रकार हमने अंगरेजों से भी अपनी भारत भूमि स्वतन्त्र करा ली है। हिंदूराष्ट्र की पताका आज गर्व से हिमाचल के शिखरों पर लहरा रही हैं। आज हिंदुस्तान स्वतन्त्र है और हिंदुत्व विजयी हुआ है।"

[यह व्याख्यान हिन्दू-राष्ट्रपति वीर सावरकर ने अहमदाबाद में अखिल भारतीय हिन्दु महासभा के अध्यक्ष पद से दिया था]

खरी-खरी बातें

[स्व० देशभक्त ला० हरदयाल जी]

मुझे यह सूचना मिली है की कतिपय देशभक्त मुसलमानों ने मुझे 'प्रमत्त' या पागल की उपाधि दी है, क्योंकि मैंने हिंदू-मुस्लिम वाद-विवाद के विषय में अपने तुच्छ भावों को प्रकट किया है। मैं इस 'प्रमत्त' की उपाधि को सहर्ष स्वीकार करता हूँ। मैं स्वदेश से दूर बैठे हुए कुछ व्यक्तिगत भावों को प्रकट करना चाहता था। मैंने केवल विद्वत्ता के दृष्टिकोण से इस प्रश्न पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। सम्भव है ये विचार अशुद्ध और निराधार प्रमाणित हों और यह भी सम्भव है कि इन भावों और विचारों में भारत की स्वाधीनता का रहस्य छिपा हो। यह भविष्य की बात है। कौन बता सकता है कि कब और किस प्रकार

स्वराज्य प्राप्त होगा ? स्वदेश प्रेमी, इतिहास और राजनीति शास्त्र का अध्ययन करके अपनी-अपनी योजनाएँ प्रस्तुत कर सकते हैं। रोग एक है, चिकित्सक बहुत हैं। देखें किसकी औषधि सफल होती है ?

इस विषय में निरर्थक कोसने और व्यक्तिगत आक्षेपों की आवश्यकता ही नहीं। एक युक्ति के समक्ष दूसरी युक्ति प्रस्तुत करनी चाहिये ताकि भली भाँति वाद-विवाद-पूर्वक विचार किया जा सके। लात तो गधा भी मार सकता है।

इसके अतिरिक्त मैं तो वास्तव में पागल हूँ और कुछ प्रतिशत हिन्दुओं को भी अपने साथ पागल बनाना चाहता हूँ। यदि एक करोड़, केवल एक करोड़ हिंदुओं के मन और मस्तिष्क में मेरी अपेक्षा आधा भी पागलपन आ जाये तो हिंदू जाति न केवल समस्त भारत और काबुल का राज्य ले लेगी अपितु पूर्वीय अफ्रीका, फ़िजी, मारीशस आदि देशों पर भी आधिपत्य जमा लेगी। यही हिंदू सङ्गठन के पागल भक्तों और सेवकों का आदर्श होना चाहिये।

निस्सन्देह मैं तो हिंदू नवयुवकों को वीरों और योद्धाओं के उस ऐश्वर्यपूर्ण पागलखाने में प्रविष्ट कराना चाहता हूँ जहां त्याग को लाभ, निर्धनता को धन और मृत्यु को जीवन समझा जाता है। मैं तो ऐसे ही पक्के पूर्ण और पवित्र पागलपन का प्रचार करता हूँ। इसीलिये इस 'पागल' की उपाधि का सम्मान करता हुआ इसे सहर्ष स्वीकार करता हूँ।

हिंदू-संगठन के पुनीत आंदोलन की उन्नति हो रही है। हिंदुसभाएँ लग रही हैं। बस, यही स्वाधीनता का मार्ग है। यही स्वराज्य की सीधी राह है। इससे दासता की बेड़ियां कट जायेंगी

इससे हिंदुस्तान के और पंजाब के इतिहास में एक नये युग का आरम्भ होगा। इसी के लिये पंजाब की पुण्यभूमि ने आज इस कायरता और वाक् पटुता के समय में भी शहीद और शूरवीर उत्पन्न किये हैं।

परन्तु क्या यह आन्दोलन कोई नया आन्दोलन है? क्या यह क्रांति आज आरम्भ हुई है? क्या हम लोग इसके जन्मदाता हैं? नहीं, कदापि नहीं। इस आन्दोलन के उत्पादक और जन्म-दाता तो वैदिक ऋषि—बाल्मीकि, व्यास कालिदास, बुद्ध और अशोक, भगवान राम और कृष्ण, श्री गुरु तेग़बहादुर और गुरु गोविंदसिंह, वीर वैरागी, शिवाजी, महाराजा रणजीतसिंह, महा-राणा प्रताप, छत्रसाल, दुर्गादास राठौर और स्वामी श्रद्धानंद हैं।

यह आंदोलन हज़ारों वर्षों से चला आ रहा है। हाँ, पंजाब में बहुत शताब्दियों तक यह आन्दोलन निर्बल हो गया था। तब गुरु तेग़बहादुर ने इसे पुनर्जीवित किया और उसके अनुयायियों ने इसे सफलता का मुकुट पहनाया। सन् १८४५, ४६ की पराजय के पश्चात् यह आंदोलन कुछ दब सा गया यद्यपि गुरु रामसिंह के अनुयायियों ने चेतावनी भी दी। अब फिर यह आन्दोलन उसी पवित्र कार्य की पूर्ति के लिये आरम्भ किया गया है ताकि गुरुओं का जीवन-उद्देश्य सफल हो और इस पावन मातृभूमि पर हिंदू स्वराज्य-सुख-सम्पत्ति का उपभोग कर सकें।

हम हिंदू स्वराज्य और शुद्धि द्वारा ही स्वदेश को सदैव के लिये सुख शांति और एकता रूपी धन से धनी कर सकते हैं। शेष लीपापोती व्यर्थ की विडम्बना है। वह केवल उस कच्ची भीति की नाईं है जो वर्षा से बैठ जायेगी। मैं डंके की चोट कहता

हूँ कि हम हिन्दुस्थान में भी हिंदू स्वराज्य प्रतिष्ठित करेंगे और हिंदु-स्थान को ऋषियों का शुद्ध भारत बनायेंगे। मैं यह घोषणा करता हूँ, जिनके कान हों वे सुन लें, हाँ सब मतावलम्बी सुन लें। क्या कुलिया में गुड़ फूट सकता है? कानाफूसी और झूठी बातों से इतने विशाल देश के राष्ट्रीय-आन्दोलन को सफलता मिल सकती है? यह असम्भव है। हिन्दू स्वराज्य और शुद्धि के आदर्शों को एक बार नहीं, दो बार नहीं, प्रत्युत, शत बार दुहरा कर कहता हूँ कि हिन्दुओं की रक्षा केवल इसी मार्ग से हो सकती है। परन्तु कुछ एक सावधान राजनीतिज्ञ धीरे से मेरे कान में कहते हैं, "खबरदार, इतना न चिल्लाओ, कहीं मुस्लिम नेता न सुन लें, वे क्रुद्ध हो जायेंगे. समझौता नहीं करेंगे और कांग्रेस में न आयेंगे। चुप! चुप!! हृदय से तो हम भी तुम्हारे साथ हैं, क्योंकि हम भी हिन्दू हैं परन्तु इस प्रकार खुल्लमखुल्ला कहने और लिखने से द्वेष बढ़ जायगा और मुसलमान क्रुद्ध हो जायेंगे। बस ज़रा चुप रहो ऐसी बातें कहने की क्या आवश्यकता है?"

मेरा उत्तर स्पष्ट है, मेरे अन्तरात्मा का यह सन्देश है, मुझे न मुसलमानों से समझौता करना है और न कांग्रेस के जलसे में जाना है। मुझे न ऊपरी दिखावे से काम है, न पत्रों के सम्पादकों का भय है। मेरे अन्दर एक दृढ़ विचार है और यही मेरा स्पष्ट कर्तव्य है। यदि हिंदू जाति के राख के ढेर के नीचे कहीं ज़रा भी सुलगती हुई चिनगारी शेष है तो उस पर फूँक मार-मार कर ऐसी प्रचण्ड ज्वाला उत्पन्न कर दी जाये जिसमें हमारी दासता और दरिद्रता, दीनता और हीनता सदैव के लिये जल-भुन कर भस्मीभूत हो जाये।

भारतवर्ष यदि ईसाई हो जाय या कुछ और बन जाय तो 'हमारा भारत' नहीं रहेगा। जब हमारी ऋषि-भाषा, हमारा इतिहास, हमारे पर्व और त्योहार, हमारा नाम और हमारी संस्थाएँ यहां नहीं रहेंगी तो हमारी बला से इस देश में कोई बसे। यदि हिंदुस्तान, हिंदुओं का स्थान नहीं रहेगा तो हमारी जातीयता नष्ट हो जायेगी।

बुलबुल ने आशियाना चमन से उठा लिया।
उसकी बला से बूम रहे या हुमा रहे॥

स्वराज्य के लिये मुसलमानों की सहायता की अपेक्षा क्यों है? मेरा यह प्रश्न है। यदि कुछ देशप्रेमी यह कहें कि केवल हिंदुओं के बल से स्वराज्य नहीं मिलेगा, तो इस बात का क्या प्रमाण है कि हिंदू और मुसलमान मिल जायेंगे तो स्वराज्य अवश्य ही मिल जायेगा। यह भी कुछेक कांग्रेसी नेताओं की मनमानी बात है। सन् '५७-५८ में हिंदु और मुसलमानों का ऐक्य था तब कौन सा तीर मार लिया? दोनों को पराजय मिली। खिलाफ़त आन्दोलन के समय बड़ा एका था, तब क्या स्वराज्य मिल गया?

मैं कहता हूँ कि यदि हिंदू स्वयं अपनी रियासत नहीं बना सकते तो दूसरे की सहायता से कुछ भी लाभ न होगा। दोनों ही असफल होंगे और यदि हिन्दू स्वयं अपना स्वराज्य ले सकते हैं तो दूसरों की सहायता की आवश्यकता ही क्या है?

मैं इस घातक भावना के विरुद्ध हूँ कि "हिन्दू स्वयं स्वराज्य नहीं ले सकते"। मैं अपनी प्रबल आवाज उठाता हूँ कि यह विचार हिंदुओं के लिये हलाहल विष है।

हिंदू के आदर्श को छोड़ देना अपनी राष्ट्रीय आत्मा का

हनन करना है। हिन्दुओं से यह न कहो कि अन्य जातियों का साहाय्य आवश्यक है, प्रत्युत उन्हें यह सिखाओ कि यदि अन्य मतावलम्बी सहायता देना भी चाहें तो उसे स्वीकार न करो। यह स्वराज्य का कठिन मार्ग है। जिसे अपने बाहुबल पर विश्वास है उसकी विजय होगी। जो अन्य से संधि और समझौते करता फिरता है और अपनी मान-मर्यादा का मान नहीं करता—वह और उसके विजातीय संगी-साथी सब मारे जायेंगे। जब बिगाने लोग प्राचीन भारत की सब संस्थाओं का निरादर करके फ़ारसी और अरबी सभ्यता का भारत में प्रचार करते हैं, तो हम उनके साथ मिल कर काम नहीं कर सकते।

हिन्दुओं की अनियमता, मूर्खता और मूढ़ता की भी कोई सीमा तो होनी चाहिये। यदि हिन्दू प्रतिवर्ष रामचन्द्र का त्योहार मनाते हैं तो उनको उन विरोधियों से अवश्य दूर रहना होगा जो रामचन्द्र का नाम हिन्दुस्थान की पुण्य भूमि से पूर्णतया भुला देना चाहते हैं। यदि हिन्दू संस्कृत और साहित्य से प्रेम रखते हैं तो उन सज्जनों से उन्हें अवश्य यह सब कुछ स्पष्ट निवेदन करना होगा जो फ़ारसी और अरबी साहित्य को हिन्दुस्तान में प्रविष्ट कर रहे हैं।

हिन्दुओं को कुछ तो अपने नियमों और सिद्धान्तों का पालन करना चाहिये। सच बात तो यह है कि हिन्दुओं को अपने सिद्धान्त या संस्था से प्रगाढ़ प्रेम नहीं है। वे फ़ारसी पढ़ने पर भी तैयार हैं। उद्देश्य केवल रुपया है। जब तक इन्हें रुपया मिले और उनकी जान बची रहे, बच्चे भले ही नष्ट हो जांय, तब तक ये सुखी हैं। राष्ट्रीय या धार्मिक सिद्धांत जायें भाड़ में।

इसी कारण इन्हें राष्ट्रीय स्वाधीनता असम्भव दीख पड़ती है।

मैं उस रोग उपचार बता देता हूँ, वह यह कि अपनी राष्ट्रीय संस्थाओं से प्रेम बहुत बढ़ाया जाये। अपनी भाषा, अपना इतिहास, अपने त्यौहार, अपने महापुरुष, अपना वेष, अपना आहार-व्यवहार इत्यादि अपनी हिन्दू संस्थाओं के प्रति जितना प्रेम उत्पन्न किया जायेगा, उतना ही दूसरों की सहायता लेना निरर्थक और निर्मूल प्रतीत होगा। जो हिन्दू स्वयं क्षण-क्षण में अपनी इन प्राचीन संस्थाओं की जड़ काट रहे हैं, उनके साथ किस ध्येय को लेकर काम किया जाय। अब रहा यह प्रश्न कि क्या यह सम्भव है? इसका उत्तर यह है कि 'प्रत्येक मनुष्य को अपने साहस और सामर्थ्य के अनुकूल ही चिंता होती है।" कोई भी उच्च और कठिन आदर्श केवल उन आत्माओं की बुद्धि में आ सकता है जो बहुत त्याग करने पर उद्यत हों। वास्तव में प्रत्येक व्यक्ति अपनी अन्तरात्मा को देखकर ही कह सकता है कि अमुक कार्य सम्भव है अथवा असम्भव। जिन कायर और स्वार्थ-परायण हिन्दुओं को केवल "होगा वही जो राम रचि राखा" करना आता है, उनके लिये सब कुछ कठिन है। उनकी सम्मति में स्वराज्य-प्राप्ति अत्यन्त ही असम्भव है, क्योंकि हिन्दू और मुसलमान अत्यन्त निर्बल और असमर्थ हैं और अंगरेज़ों का भाग्य-सूर्य शिखर पर है।

परन्तु जिन हिन्दुओं के हृदयों में ऋषियों, वीर-योद्धाओं और गुरुओं की शिक्षा काम कर रही है, उनके लिये न केवल हिन्दू स्वराज्य प्रत्युत अफ़गानिस्तान को जीत लेना भी सम्भव है। यह केवल अपने साहस पर निर्भर है।

मेरी पुकार

(देश भक्त लाला हरदयाल जी)

हिंदू संगठन से ही भारतवर्ष में स्वराज्य स्थापित होगा। जिस समय मैंने हिन्दू-मुस्लिम समस्या पर कुछ विचार प्रकट किये थे, उस समय मुझे यह बिल्कुल भी ध्यान न था कि सारे इस्लामी समाचार पत्र और कुछ हिन्दू समाचार पत्र भी मेरे लेखों पर इतना ध्यान देंगे और इस प्रकार टीका-टिप्पणी करेंगे कि मानों मैंने एक तहरीरी बम फेंक दिया है। इस आन्दोलन से मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ है। अब मुझे विश्वास हो गया है कि हिन्दुओं में राजनीति का ज्ञान बहुत कम है और मुसलमानों में स्वार्थ और मुँहज़ोरी का कुछ ठिकाना नहीं है।

अस्तु, अब मैं अपना राजनीतिक स्वीकारपत्र (वसीयतनामा)

लिखता हूँ कि जिससे नवयुवकों और देवियों को अपना कुछ कर्तव्य ज्ञात हो सके। यूँ तो मुझे आशा है कि मैं बहुत वर्षों तक देश और जगत् की सेवा कर सकूंगा, परन्तु जीवन का कुछ भरोसा नहीं है। न मालूम कब शरीरान्त हो जाय। इस कारण मैं आज हिन्दू जाति के राजनैतिक आदर्श के विषय में कुछ विचार प्रकट करता हूँ।

सम्भव है कि आज कुछ उत्साह-हीन और देशभक्त भी मेरी निन्दा करें, परन्तु भविष्य में स्वतन्त्र भारत और स्वतन्त्र पंजाब के स्कूलों में यह लेख लड़के और लड़कियों की पाठ्य पुस्तकों में सम्मिलित किया जायगा। मैं कहता हूँ कि हिन्दू जाति, भारतवर्ष और पंजाब का भविष्य निम्न चार आदर्शों पर निर्भर हैं:—

(१) हिंदू (आर्य) संगठन (२) हिंदू राज्य स्थापित करना (३) इस्लाम और ईसाईमत की शुद्धि (४) अफ़गानिस्तान और सरहद की विजय और शुद्धि।

यवनों और ईसाईयों के विदेशी मत

जब तक हिंदू जाति इन चार बातों को पूर्ण नहीं करेगी तब तक भावी सन्तान सर्वथा भयभीत रहेंगी और हिंदू जाति की रक्षा असम्भव होगी। हिंदू जाति जिसके ६ या १० भाग हैं एक देश में बसती है। इसका एक इतिहास है और इसकी एक सी संस्थाएं हैं। परन्तु यवन और ईसाई इस एकता के फन्दे से बाहर रहते हैं, क्योंकि इनके मज़हब विदेशी हैं और वे फारसी, अरबी और अंगरेज़ी संस्थाओं को प्रिय समझते हैं। फिर इन दो मतों के अनुयायियों की शुद्धि कुछ इस प्रकार करनी होगी कि जैसे कोई व्यक्ति आँख से कंकर निकाल कर फैंक देता है। इसके

अतिरिक्त अफ़गानिस्तान और सरहद का पहाड़ी इलाका पहिले भारतवर्ष का भाग था परन्तु अब यवनों के प्रभाव में है। वहां से युद्धप्रिय वीर जातियां आक्रमण करके हमारी सभ्यता का नाश कर सकती हैं। क्या हिन्दुओं ने इतिहास से कुछ भी शिक्षा ग्रहण नहीं की है?

जिस प्रकार नैपाल में हिन्दू सभ्यता है उसी प्रकार अफ़गानिस्तान और सरहद पर भी हिन्दू संस्थायें होनी आवश्यक हैं. नहीं तो स्वराज्य प्राप्त करना व्यर्थ होगा, क्योंकि पहाड़ी जातियां सर्वदा वीर और भूखी होती हैं। यदि वे हमारी शत्रु बन जायेंगी तो देश बिलकुल बेकसी की सी हालत में रहेगा और फिर नादिरशाह और जनानखाँ का समय आरम्भ होगा। अब तो अंगरेज़ अधिकारी सरहद की रक्षा कर रहे हैं, परन्तु सदा सन् १६१६ ई० न होगी कि हिन्दुओं के देश की रक्षा के लिये समुद्र पार से अधिकारी आते रहेंगे।

यदि हिन्दुओं को अपनी रक्षा करनी अभीष्ट है तो उन्हें स्वंयं हाथ पाँव हिलाने पड़ेंगे और महाराजा रणजीतसिंह और सरदार हरिसिंह नलवा की स्मृति में अफ़गानिस्तान और सरहद को विजय करके सब पहाड़ी जातियों की शुद्धि करनी होगी। यदि हिन्दू इस कर्त्तव्य से विमुख रहे तो फिर भारतवर्ष में यवन राज्य स्थापित हो जायेगा।

अंगरेज़ों से पहले हिन्दू स्वराज्य

क्या हम हिन्दू इस राजनैतिक वसीयतनामे को कार्यरूप में स्वीकार कर सकते हैं? क्यों नहीं? आप भारतवर्ष के इतिहास को पढ़ो और कायरता को छोड़ दो। यह सारा काम हो रहा था, जब अंगरेज़ी सेना ने गोरखों, सिक्खों और मरहटों को पीछे हटा

कर हमारा हिन्दू स्वराज्य हर लिया। देहली में मरहटों का बोल-बाला था और गोरखे उत्तर की ओर से हिन्दू राज्य का झंडा लेकर डबल मार्च कर रहे थे। हिन्दू राज्य तो मौजूद ही था, शुद्धि का विचार भी शीघ्र ही उन्नति पकड़ जाता यदि हिन्दू रियासत कुछ समय तक और स्थापित रहती। क्योंकि कोई न कोई प्रभावशाली बुद्धिमान् अवश्य सम्मति देता कि अब इस परतन्त्रता के कलङ्क को धो डालो और यवनों की शुद्धि कर डालो।

हिन्दू संगठन का कार्य

वास्तव में मैं केवल हिन्दू संगठन के ऐतिहासिक कार्य को प्रचलित रखने के लिए प्रार्थना करता हूं। यह स्पष्ट है कि यदि हम आरम्भ में होमरूल (Home rule) (बृटिश साम्राज्य के अन्दर स्वराज्य) स्वीकार कर लें तो भी अन्त में किसी न किसी दिन अंगरेज भारतवर्ष से चले जायेंगे क्योंकि कोई जाति सदा के लिये किसी देश पर शासन नहीं कर सकती। यह एक ऐतिहासिक सचाई है। ऐसे राज्य अन्त में किसी न किसी कारण से निर्बल होकर नष्ट हो जाते हैं। इतिहास में हम ईरान, रोम, अस्टेरिया, स्पेन, टर्की, मुग़ल आदि बलवान जातियों के राज्यों का वर्णन पढ़ते हैं, परन्तु आज वे कहां हैं? इसी प्रकार कुछ काल के पश्चात् अंगरेज़ी राज्य भी अवश्य निर्बलता और बुढ़ापे के रोग में ग्रस्त होगा।

हिन्दुओं की राजनैतिक भूल

जब अंगरेज़ भारतवर्ष से चले जाएँगे तो फिर क्या होगा? हिन्दू देशभक्त इस प्रश्न का उत्तर दें। कुछ हिन्दू समझते हैं कि तब भारतवर्ष के मुसलमान और अफ़ग़ानिस्तान के पठान कांग्रेसी महानुभावों के व्याख्यानों को पढ़ कर और बन्देमातरम् का गीत

जाकर हिन्दुओं से प्यारे भाइयों की तरह मिल जायेंगे और हिन्दू भी सहृदयता से इन यवनों से मिलकर इनके स्वागतम् में लग जायेंगे। परन्तु ऐसे भोले स्वदेश-प्रेमी हिन्दू मनुष्य-स्वभाव को नहीं जानते और न राजनीति को ही भलीभांति समझते हैं। जब तक भारतवर्ष और अफ़ग़ानिस्तान में यवन मत शेष रहेगा, तब तक यवन भाइयों के मुँह में हिन्दुओं की धन-दौलत को देख कर पानी भरता रहेगा, और इनके नेता यवन-राज्य स्थापित करके ऐश्वर्य प्राप्त करना चाहेंगे। जब तक अफ़ग़ानिस्तान और सरहद के लोग मुसलमान रहेंगे तब तक भारतवर्ष को लूटने का विचार इनकी नस २ में भरता रहेगा; क्योंकि साधारण लोग सदा ऐतिहासिक घटनाओं और पुरानी यादगारों के अनुसार आचरण करते हैं। महात्मा गांधी के तीन सप्ताह के व्रत से इस्लाम के तेरह सौ वर्ष और अफ़ग़ानिस्तान और भारतवर्ष के युद्ध के एक सहस्र वर्ष पानी में नहीं बह जायेंगे। इतिहास का जादू महात्मा जी के तप की अपेक्षा बहुत अधिक प्रभाव रखता है। इसलिये यदि हिन्दुओं को संसार की स्वतन्त्र जातियों में अपनी स्थिति को बनाये रखना स्वीकार है तो निम्नलिखित चार बातों को गायत्री मन्त्र की भांति कण्ठस्थ कर लेना उचित है, अर्थात् (१) हिन्दू संगठन (२) हिन्दू राज्य (३) पूर्ण शुद्धि, और (४) अफ़ग़ानिस्तान की विजय।

आज पांच हज़ार मील दूर बैठा हुआ पागल यह बात कहता है और आज से एक सौ वर्ष पश्चात् स्वतन्त्र हिन्दू लड़के और लड़कियां पाठशालाओं में इन शब्दों का पाठ करेंगे। भारतवर्ष का इतिहास अभी समाप्त तो नहीं हो गया है।

स्वराज्य प्राप्ति के लिये यवनों की आवश्यकता नहीं

यह भी स्मरण रहे कि जो हिन्दू देशभक्त, यवनों की सहायता को स्वराज्य प्राप्ति के लिये आवश्यक समझते हैं. वे हिन्दू सङ्गठन के कार्य में कभी भाग नहीं लेंगे या पूरी लग्न से कार्य नहीं करेंगे।

जो महानुभाव एक ओर हिन्दू सङ्गठन का प्रचार करते हैं और दूसरी ओर कांग्रेसी विचारों के अनुसार हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य का दम भरते हैं, वे वास्तव में बड़ी भूल कर रहे हैं। इस प्रकार न तो हिन्दू सङ्गठन ही होगा और न हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य (यदि ऐसी एकता को सम्भव भी मान लिया जाय तो) वही हाल होगा कि "दुविधा में दोनों गए, माया मिली न राम।" जो नेता मुसलमानों से एकता करने की धुन में लगे रहते हैं, उनकी सम्मति है कि बिना यवनों की सहायता के भारतवर्ष स्वतन्त्र नहीं हो सकता और वे यह भी सोचते हैं कि यवनों से वार्तालाप करके अवश्य एकता हो जायेगी। बस, इन दो भ्रमपूर्ण विचारों के कारण ये हिन्दू देशभक्त अपनी जाति का नाम सुनने से दूर भागते हैं। और अब तो महात्मा गांधी जी भी थक कर बैठ रहे हैं।

मैं केवल यह बताना चाहता हूँ कि जिन हिन्दुओं के मन में हिन्दू-मुस्लिम एकता के विषय में ग़लत विचार कई वर्षों से जागृत हैं, वे संगठन की तहरीक के विरोधी हैं।

हिन्दू-मुस्लिम एकता असम्भव है

अब हमारा कर्तव्य है कि इस विषय पर स्पष्ट वार्तालाप करें जिससे भविष्य में ऐसा भयानक दृश्य न देखना पड़े कि हिन्दू

महासभा और प्रसिद्ध हिन्दू देशभक्त पृथक् रहें, केवल इस कारण से कि वे इस्लामी देश हितैषियों के स्वागत में लगे हुए हैं और उनको साथ ले चलने की प्रतीक्षा में खड़े हैं।

अब इस्लामी गिरोह तो आकर मिलने से रहा परन्तु इनका अपना हिन्दू जत्था इनके साथ सम्मिलित होने से हानि उठाएगा और निर्बल हो जाएगा।

हिन्दुओं की बुद्धि पर कांग्रेसी परदा

हिन्दुओं की बुद्धि पर जो यह कांग्रेसी परदा पड़ गया है उसे दूर कर दो और इन्हें सिक्खों और मरहठों की संगठन शक्ति की अजमत याद दिलाओ। वे कांग्रेसी महानुभाव समझते है कि भारतवर्ष का नवीन इतिहास सन् १८८४ ई० में आरम्भ हुआ जब कुछ अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त किये हुए हिन्दुओं, मुसलमानों और ईसाईयों ने मिस्टर ह्यूम की सम्मति से एकत्रित होकर कुछ प्रस्ताव पास कर दिए और एक विदेशी भाषा का शब्द लेकर अपनी सभा का नाम 'कांग्रेस' रख दिया। परन्तु मेरे विचारानुसार भारतवर्ष का नवीन इतिहास सन् १६५० ई० और सन् १७०० ई० के मध्य आरम्भ हुआ जब सिक्खों में स्वतन्त्रता के विचारों ने ज़ोर पकड़ा और मरहठों ने यवन राज्य की जड़ काटनी आरम्भ की। केवल इसी अन्तर के कारण कुछ भारतवासी हिन्दू सभा की सहायता नहीं करते। इनको हिन्दू धर्म की इन ऐतिहासिक घटनाओं से प्रेम नहीं और भारतवर्ष के भविष्य के विषय में इनके विचार बड़े भ्रान्तियुक्त हैं।

सहायता की आवश्यकता नहीं। सारे बाईस करोड़ हिन्दुओं की सहायता की भी आवश्यकता नहीं। इङ्गलैण्ड के सारे चार करोड़ निवासी तो भारतवर्ष पर आक्रमण करने नहीं आये थे। केवल कुछ सहस्र अंग्रेज़ों ने हमारे देश को विजय कर लिया। यदि गोरखों, सिक्खों, मरहठों, राजपूतों और वीर हिन्दुओं में से एक करोड़ का भी सच्चा सङ्गठन हो जाये तो स्वराज्य मिल जायेगा। जब सिक्खों ने पंजाब में हिन्दू राज्य स्थापित किया तो इनकी कितनी संख्या थी। यह बड़ा नियम कभी नहीं भूलना चाहिए कि संख्या से कभी विजय नहीं होती, वरन् एकता और साहस से हिंदू-स्वराज्य-दल में केवल मुख्य दृढ़ हिंदू देशभक्त सम्मिलित किए जावें। एक करोड़ हिंदू देशभक्तों का सङ्गठन करना ही स्वराज्य का मार्ग है।

सिक्खों और मरहठों के इतिहास का पाठ

कुछ हिन्दू देशभक्त मुसलमानों और अफ़ग़ानों से बहुत डरते हैं। वे समझते हैं कि मुसलमान और अफ़गान भूतों की भाँति डरावने तथा हिन्दू डरपोक तथा निर्बल हैं, पर यह इनकी बुद्धि का भ्रम है। इसके दूर करने का उपाय यह है कि ऐसे हिन्दुओं को एक बार सिक्खों और मरहठों के इतिहास का पाठ करा दिया जाय। सम्भव है उन्होंने केवल उन अन्धकार युक्त शताब्दियों के इतिहास का अधिक मनन किया हो जब राजपूत मुसलमानों से सदा पराजित होते जा रहे थे। परन्तु जब वे सिक्खों और मरहठों के इतिहास का मनन करेंगे तो इनका भय दूर हो जायगा।

अंग्रेज़ी राज्य का प्रभाव

केवल ७० वर्ष के अंग्रेज़ी राज्य ने हमें ऐसा भीरू बना दिया है कि महाराजा रणजीतसिंह के अफ़सरों और सिपाहियों के कामों पर कठिनता से विश्वास आता है, परन्तु इतिहास साक्षी है कि वह भी तेजस्वी अफ़ग़ान थे जो महाराजा रणजीतसिंह की प्रजा बन कर रहे थे और चूँ न करते थे। हिंदुओं में दिन प्रति दिन सभ्यता की शक्ति बढ़ रही है। यदि यवन लोग अधिक सरकारी नौकरियाँ चाहते हैं; तो उनको मुबारिक हों। इस व्यवहार से उनकी जाति निर्बल होगी। जातीय शक्ति सरकारी नौकरियाँ और कौंसिल के सदस्यों की संख्या पर निर्भर नहीं हैं, वरन् त्यागी सेवकों और बलिदान हुए वीरों की संख्या से जाति का भविष्य जाना जाता है। बस हम पूछते हैं कि क्या मुसलमानों में हिंदुओं की अपेक्षा अधिक त्यागी सेवक और प्राण न्यौछावर करने वाले वीर उपस्थित हैं ?

इस प्रश्न का उत्तर हम हिन्दुओं के लिए अधिक संतोष-जनक है, क्योंकि हमारे सम्मुख यह उच्चादर्श है कि भारतवर्ष और पंजाब हमारा देश है, भारतवर्ष के इतिहास पर हमको अभिमान है।

यवनों की शोचनीय दशा

हमारा एक ठिकाना तो है जिसके प्रेम में मग्न होकर बलि-दान करें। परन्तु इन बेचारे आधे फ़ारसी, आधे अरबी और आधे भारतीय यवनों के लिए कोई उच्चादर्श नहीं। ये देश प्रेम से शून्य हैं, क्योंकि सारे भारतवासियों ने यवन का मत ग्रहण नहीं किया है और इस कारण यह इस देश को अपना देश नहीं समझते।

बस यही उच्चभाव हम हिन्दुओं को बलिदान होने के लिए उद्यत कर देता है परन्तु यवन लोग इससे शून्य हैं। उनमें केवल मज़हबी प्रेम रह गया है अर्थात् इस्लामी इतिहास और कारनामे।

परन्तु मनुष्यों का स्वभाव ऐसा हो गया है कि जो थोड़े से विशालहृदय यवन नेता हिन्दुओं से सच्चा प्रेम प्रकट करें—तो वास्तव में हम इन पर पूरा भरोसा नहीं कर सकते क्योंकि समय पड़ने पर इनका मज़हबी प्रेम अवश्य रंग लायेगा और उस समय हम हिन्दू लोग पश्चाताप करेंगे।

मैं मुसलमानों के मज़हबी प्रेम का बहुत दिनों से तमाशा देख रहा हूँ। उदाहरणार्थ पानीपत के प्रसिद्ध कवि अलताफ़हुसैन हाली ने आरम्भ में स्वदेश-प्रेम की बढ़िया नज़में लिखीं। इनकी एक नज़म (कविता) का पहिला पद यह था—'ऐ हिसार आफ़यत ऐ किशोर हिन्दोस्तां।' इस कविता में बड़े अभिमान के साथ यह दर्शाया गया था कि भारतवर्ष ने महान् सिकन्दर को पराजित किया। परन्तु कुछ काल के पश्चात् जब हाली साहिब अलीगढ़ की तहरीक के प्रभावों में आये तो अन्त में वही इस्लाम का रोना ले बैठे। वह गीत अब मुसलमानों की जातीय कविता है। इसी प्रकार डाक्टर मुहम्मद इकबाल साहब को देखिए। उन्होंने वह प्रसिद्ध गीत जिसका पहिला पद यह है कि 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा' बनाया था। उस समय आप वास्तव में स्वदेशप्रेमी थे, परन्तु खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग बदलता है। अन्य यवन मित्रों की संगति के प्रभाव से आप स्वदेश-प्रेम को लात मार कर केवल इस्लाम-प्रेमी रह गये और यह शेर लिखा—

'मुस्लिम हैं हम वतन हैं सारा जहाँ हमारा'

इससे से पहिले आप यह पद लिख चुके थे—

"हिन्दी हैं हम वतन हैं हिन्दोस्तां हमारा".

जब ऐसा विद्वान्, विशाल हृदय, गुणग्राही और मिलनसार मुसलमान कवि भी अन्त में केवल इस्लाम-प्रेमी बन गया और इसी प्रकार जनाब शौकतअली साहब की सम्मति कोहाट के विषय में महात्मा गांधी जी की सम्मति के विरुद्ध हुई तो साधारण मुसलमानों की कौन कहे ? बस. मैं सारे हिन्दू देशभक्तों से पुकार कर कहता हूँ कि वे थोड़े समय के कच्चे मित्रों के कारण हिन्दू संगठन को बरबाद न करें। ऐसे दिल व गुर्दे के मुसलमानों को मुस्लिम लीग में आशीर्वाद के साथ वापिस भेज दिया जाय जिससे वे अपने मुसलमान भाइयों को अच्छा उपदेश करें।

कुछ हिन्दू नेताओं की भूल

शोक है कि ऐसे दस पांच यवनों के लिए हमारे बड़े २ हिन्दू नेता हिन्दू महासभा से अलग रहें। भला ऐसे विशाल-हृदय यवनों की संख्या कितनी है ? और इनका स्वदेश-प्रेम भी इतना निर्बल है कि साधारण-सी बातों से इस्लामी-प्रेम के वशीभूत हो जाते हैं। जब बड़े २ मुसलमान नेताओं की यह दशा है तो साधारण पक्षपातान्ध यवनों की दिमाग़ी हालत हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य को असम्भव बना देती है। कुछ हिन्दू समझते हैं कि केवल हिन्दू राज्य स्थापित करना अत्यन्त कठिन होगा और सम्मिलित हिन्दू-मुसलमान-ईसाई राज्य स्थापित करना आसान होगा;

यह उनकी बड़ी भूल है। वे मनुष्य-स्वभाव से अनभिज्ञ हैं और बड़ी तहरीकों में सफलता पाने के भेदों को नहीं जानते। वे केवल मनुष्यों की संख्या का विचार करते हैं। परन्तु सम्मिलित हिन्दू-मुस्लिम-ईसाई-राज्य का मतलब भी अच्छी तरह समझ लें (जो कि असम्भव है)। तब भी मैं कहता हूँ कि शुद्ध हिन्दू राज्य स्थापित करना ऐसे सम्मिलित राज्य स्थापित करने की अपेक्षा बहुत ही आसान है।

इसी प्रकार केवल मुसलमानी राज्य स्थापित करना ऐसे सम्मिलित राज्य स्थापित करने की अपेक्षा सरल काम है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य और विशेष नियम होता है जिससे और लोगों में एकता और उत्साह उत्पन्न होता है। एकता का होना अत्यन्त आवश्यक है। एक घोड़े की गाड़ी दो घोड़ों की गाड़ी की अपेक्षा सुस्त चलेगी, यह ठीक है। परन्तु यदि किसी गाड़ी में एक घोड़ा और एक बैल जोड़ दिया जावे, तो वह एक घोड़े की गाड़ी की अपेक्षा अधिक तेज़ नहीं चलेगी, सम्भव है कि ऐसी बिलकुल ही न चले और उसके पुर्ज़े शीघ्र ही टूट जावें क्योंकि घोड़ा और बैल साथ २ नहीं दौड़ सकते। गत योरोपीय महासमर में जर्मन देश के किनारे पर जर्मन सैनिकों की संख्या शत्रुओं से कम थी परन्तु वे बहुत समय तक वीरता से लड़ते रहे। इसका कारण यह था कि सब जर्मन जाति के थे और उनमें एकता थी। परन्तु फ्रांस की ओर से अंगरेज़ फ्रांसीसी, भारतीय मुसलमान आदि विविध जातियों

के लोग युद्ध करने आये थे। उनमें खींचातानी रहती थी और जर्मनी की भांति उनकी एक दृढ़ आशा न थी।

हिन्दू संगठन और हिन्दू राज्य की महिमा

एक हिन्दू-जातीय आन्दोलन में इतिहास, भाषा, त्योहारों आदि जातीय संस्थाओं की सहायता से जो जीवन उत्पन्न किया जा सकता है, वह एक सम्मिलित हिन्दू-मुस्लिम-ईसाई सभा में उत्पन्न करना असम्भव है। इसलिये हिन्दू यदि अपने संगठन से हिन्दू राज्य स्थापित करने का उद्योग करें तो इन्हें शीघ्र सफलता की आशा हो सकती है, परन्तु अन्य जातीय शक्तियों को मिलाकर एक सम्मिलित आन्दोलन बनाने से कभी सफलता नहीं हो सकती।

मेरी सम्मति में जातीय जागृति के पश्चात् केवल गोरखे ही हिन्दू राज्य स्थापित कर सकते हैं, क्योंकि इनमें एकता व वीरता है। हिन्दुओं की यह एक ही जाति बेड़ा पार कर सकती है। जैसे केवल मरहटों ने ही देश के एक बड़े भाग में यवन राज का अन्त कर दिया और राजपूत चुप बैठे रहे।

विजय का साधन एकता है। केवल संख्या से कुछ लाभ नहीं होता, अपितु भिन्न २ प्रकृति और विविध विचार के अधिक मनुष्य एकत्रित करने से उल्टी हानि होती है क्योंकि इससे उत्साह न्यून हो जाता है और बलिदान की शक्ति नष्ट हो जाती है। अंग्रेज़ भारतवर्ष पर राज्य करते हैं, परन्तु इनके साथ फ्रांसीसियों, अमरीकनों, जर्मनों को भी सम्मिलित कर दिया जाय

तो इनका कार्य कठिन हो जायगा और इनका राज्य निबल हो जाएगा। अब इंगलिस्तान के नाम पर प्रत्येक अधिकारी और सिपाही अंगरेज़ी भाषा बोलकर अपना कर्त्तव्य पालन करने को उद्यत है, परन्तु सम्मिलित प्रबन्ध में केवल वैमनस्य और गड़बड़ होती है।

यवनों की शुद्धि और अफ़ग़ानिस्तान की विजय

सम्भव है कि कुछ हिन्दू देशभक्त यह मान लें कि हिन्दू राज्य स्थापित हो जायगा। परन्तु वे सोचते हैं कि सब यवनों की शुद्धि और अफ़ग़ानिस्तान की विजय अत्यन्त कठिन है। यह भी इनकी भूल है। जब हिन्दुओं में इतना साहस हो जायगा कि अपना राज्य स्थापित कर लें तो फिर सब यवनों और ईसाईयों की शुद्धि तथा अफ़ग़ानिस्तान को विजय करना एक साधारण बात होगी।

जब अपना राज्य होगा तो यवनों और ईसाइयों को धीरे २ प्रेमपूर्वक हिन्दू बनाने में क्या कठिनता होगी? राज्य का बल बड़ा होता है। यदि भारतवर्ष में हिन्दू राज्य होगा तो अफ़ग़ानिस्तान को सम्मिलित करना आवश्यक होगा, क्योंकि यदि अफ़ग़ानिस्तान को हिन्दू सभ्यता में सम्मिलित न किया जायगा तो उससे भारतवर्ष के हिन्दू राज्य को सदा खटका रहेगा।

विचारणीय बातें

कुछ हिन्दू यह कहते हैं कि सारे कार्य एक बार कर डालना असम्भव होगा अर्थात् यवनों तथा ईसाइयों का विरोध और अविश्वास होते हुए हिन्दू राज्य स्थापित करना और फिर शुद्धि

तथा अफ़ग़ानिस्तान को विजय करना इत्यादि यह तो बिल्कुल मूर्खता की बातें लिख रहे हो। परन्तु मैं भलीभाँति जानता हूँ कि कौन मूर्ख है। ऐसे उत्साहहीन हिन्दू देशभक्त इस बड़े नियम को नहीं जानते कि जब कोई जाति जागृत होती है तो वह कई कठिन कार्य एक साथ कर डालती है। उसमें इतना उत्साह होता है कि सब कुछ आसान हो जाता है। जब तक कोई व्यक्ति आलस्य में बिस्तर पर पड़ा रहता है तब तक उसके घर में मकड़ी के जाले, गर्द, कूड़ा-करकट एकत्रित होता रहता है परन्तु जब वह एक बार आलस्य त्याग कर उठ खड़ा होता है और झाडू लेकर सफ़ाई कर देता है तो वह यह नहीं सोचता कि इन मकड़ी के जालों को रहने दूँ, क्योंकि इनके हटाने से कुछ अधिक कष्ट होगा। वह सारा कार्य पूर्ण कर डालता है क्योंकि उसके मन में सफाई का ध्यान मौजूद है। जब नदी में बाढ़ आती है तो जल का वेग मकानों, पेड़ों और पशुओं सब को बहा ले जाता है।

सच्चे उत्साह तथा शक्ति के परिणाम

मेरा तात्पर्य यह है कि जब तक हिन्दू पराधीन और आलसी हैं तब तक इन पर सब ओर से संकट है। यवन अपना मत फैलाते हैं, ईसाई इनकी जड़ काटते हैं, परन्तु जब हिन्दू निद्रा को त्यागकर जागृत हो जाएँगे और अपने प्राचीन भारतवर्ष का ध्यान करके रक्त के आँसू बहाया करेंगे तो उस समय इस जाति में इतना उत्साह उत्पन्न होगा कि स्वराज्य, शुद्धि और अफ़ग़ानिस्तान की विजय के अतिरिक्त सम्भव है कि हम पूर्वी अफ्रीका, फ़िजी और दूसरे देशों को भी अपने अधीन कर लेंगे, जहाँ हिन्दू भाई बसते हैं। क्योंकि उस समय हम संसार भर में किसी हिन्दू भाई को परा-

धीनावस्था में नहीं छोड़ेंगे। ऐसी देश-भक्ति की चलेगी और हिन्दू नाम की गङ्गा में ऐसा चढ़ाव आवेगा।

बस भारतवर्ष कभी स्वतन्त्र होगा तो वह हिन्दू राज्य से होगा और यदि वह पहला कार्य कर लिया तो शेष सब कार्य आसान होंगे। वस्तुतः यह प्रथम कार्य ही सब से कठिन है।

ऐतिहासिक प्रमाण

इस नियम का ऐतिहासिक प्रमाण स्पेन देश के इतिहास से मिलता है। कई शताब्दियों तक यह देश अरब और मराकों के यवनों के अधीन रहा। परन्तु जब चौदवीं शताब्दियों में इस जाति में जागृति उत्पन्न हुई, तो दो शताब्दियों के भीतर यह देश स्वतन्त्र हो गया और फिर यवनों को अपने देश से बाहर निकाल दिया। फिर कुछ सहस्र वीरों ने समुद्र पार जाकर अमरीका को खोजा, दक्षिणी अमरीका में अपना राज्य स्थापित किया और आज तक वहां स्पेन की भाषा बोली जाती है।

जातीय आंदोलन के आरम्भ में किसी को यह ध्यान भी न हो सकता था कि अंत में दक्षिणी अमरीका में राज्य स्थापित हो जायगा। परन्तु जब वीर देश-भक्त एक बार घर से बाहर निकलते हैं तो फिर कहीं पहुँच जाते हैं।

इसी प्रकार इङ्गलैण्ड कई शताब्दियों तक विदेशियों के आधीन रहा, परन्तु जब १५८० ई० के लगभग जातीय एकता और उत्साह के भाव जागृत हुए तो तीन सौ वर्ष के भीतर इस जाति ने आश्चर्यजनक उन्नति कर डाली, यहां तक कि अमरीका, आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड में नवीन बस्तियां स्थापित कीं और भारतवर्ष को विजय कर लिया। मैं स्पष्ट कहता हूं कि यदि भविष्य में भारतवर्ष में जागृति होगी तो न केवल हिन्दू राज्य

स्थापित हो जायगा अपितु यवनों की शुद्धि, अफ़गानिस्तान की विजय, आदि शेष आवश्यक आदर्श भी शीघ्र पूरे हो जायेंगे। इन के अतिरिक्त हमारी वीर सन्तानें क्या २ बड़े २ कार्य कर डालें यह कौन जानता है ?

अब देशभक्त बतायें कि पागल कौन है ? मैं या वे विवेक-शून्य स्वदेशवासी जो इतिहास और राजनीति की बातों से अनभिज्ञ हैं और इस कारण मेरी युक्तियों का उत्तर केवल गालियों से दे सकते हैं। यदि किसी देशभक्त को मेरी इस राजनैतिक शिक्षा में कुछ सन्देह हो तो वह वादविवाद करके अपनी शङ्काओं का निवारण कर ले। मैं जो कुछ कहता या लिखता हूँ वह बड़े विचार के पश्चात् लिखता और कहता हूँ परन्तु कुछ सज्जनों को यह बात बुरी मालूम होती है। ऐसे स्वदेश-प्रेमी प्रौढ़ युक्तियों द्वारा शास्त्रार्थ कर लें।

इस कारण आज हम हिन्दू सङ्गठन आरम्भ करके पंजाब के गुरुओं और महाराष्ट्र के वीरों का कार्य जारी रखते हैं। हिन्दू राज्य, सब यवनों और ईसाइयों की शुद्धि और अफ़गानिस्तान विजय और शुद्धि हमारे आदर्श बन जावें। इसके अतिरिक्त और जो कुछ शुभ कार्य हो वह किया जाय। यह हिन्दू जाति के भविष्य का दृश्य है, यह हमारे पूर्वजों का और वीरों का हमारे ऊपर ऋण है, यह हमारी भावी सन्तान की ध्वनि है और यह प्रत्येक हिन्दू (आर्य) पुरुष और स्त्री का धर्म है जिसके लिये तन मन धन से प्रयत्न करो। यही मेरी पुकार है और यही मेरी शिक्षा है।

॥ ओ३म् शम् ॥

मुद्रक—विश्वनाथ एम. ए. आर्य प्रैस लि० १७ मोहनलाल रोड लाहौर।
प्रकाशक—विश्वनाथ एम. ए. राजपाल एण्ड संज अनारकली लाहौर